श्री महावीर
धर्म कथा संग्रह
एव
पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी
— सचित्र झांकी —
प्रकाशक :—
न समाज

—: दो शब्द :—

यह पुस्तक छपने का मूल कारण रेवाड़ी पचकल्याण में इधर आने का मेरा हुवा। यह सग्रह मुनि ज्ञान सागर महाराज के सघ मे पिछले दो चतुर्मास मदनगंज किशनगढ, नसीराबाद दोनो राजस्थान प्रान्त में करते हुवे गुरु महाराज की देन से और ज्ञान का जितना भी क्षयोपशम रहा तथा शास्त्रो की स्वाध्याय में सुस्मरण शक्ति रही लिखना होतारहा सुन्दर रूप से पढने वालो को जिज्ञासा बनी रहे मनके भावो के पूर्ण होने का समय आया। और छपी विशेष इसमे सुन्दरता जो पंचकल्याण के चित्र दिये गये प्रेस मालिक का अनुग्रह रहा १३ चित्र जो समय समय के दिये गये है। बाकी २ अकलक निकलक के भी एक कथा होने से शामिल होगये। अब रहा पंचकल्याण प्रतिष्ठा के होने का सौभाग्य, यहा की समाज को पुण्य लाभ होना मेरे दीक्षा गुरु स्वर्गस्थ मुनि विमल सागर महाराज स० २०२५ मे सघ सहित रेवाडी पधारे एक ऐलक दीक्षा भी इधर हुई उनके प्रेरित करने से समाज ने मानस्थम्भ की नीव रखी उस समय भी चतुर्मास करने का रेवाड़ी सौभाग्य मिला करीब डेड साल पहले मुनि सम्भवसागर बर्धमान सागर राजस्थान से दिल्ली चतुर्मास के लिये जाते हुवे समाज को प्रेरित करगये यह सर्व दिगम्बर त्यागियो के महात्म्य का कारण है जो इस युग में धर्म कार्य चल रहा है। इस पुस्तक को रूचि पूर्वक पढने पर जो धर्म लाभ पढने वालो को होगा तभी मेरा परिश्रम सफल होगा जिन दानियों ने समय समय दान देकर तथा भेजकर पुण्य सञ्चय किया उनको भी धन्यवाद है। हाँ आचार्य रत्न देशभूषण महाराज का वरद हस्त इस पचकल्याणक मे सघ सहित पधार कर मेले की शोभा ही नही वढी जन जन को धर्म लाभ के साथ साथ आशीर्वाद शब्द भी एक महीना तक बराबर सुनने का सौभाग्य प्राप्त रहा। अन्त मे प्रेस मालिक भाई शिखरचन्द जैन आदि भी धन्यवाद के अधिकारी हैं जिनके अथक परिश्रम का कारण बनकर सुन्दर रूप से पुस्तक समाज तथा अन्य समाज के हाथो मे आरही है वैसे पुस्तक छोटी है परन्तु विशेषता अधिक है।

रेवाडी हरियाणा
कार्तिक अमावस्या
वीर वि० २४९९

गुरू महाराजो के चरणों मे
सर्मपित करने वाला
निग्रन्थों का अनुज—
आदि सागर क्षुल्लक (पजाब)

धर्म-कथा-संग्रह

एवं

पंच कल्याणक महोत्सव, रेवाड़ी

(सचित्र झांकी)
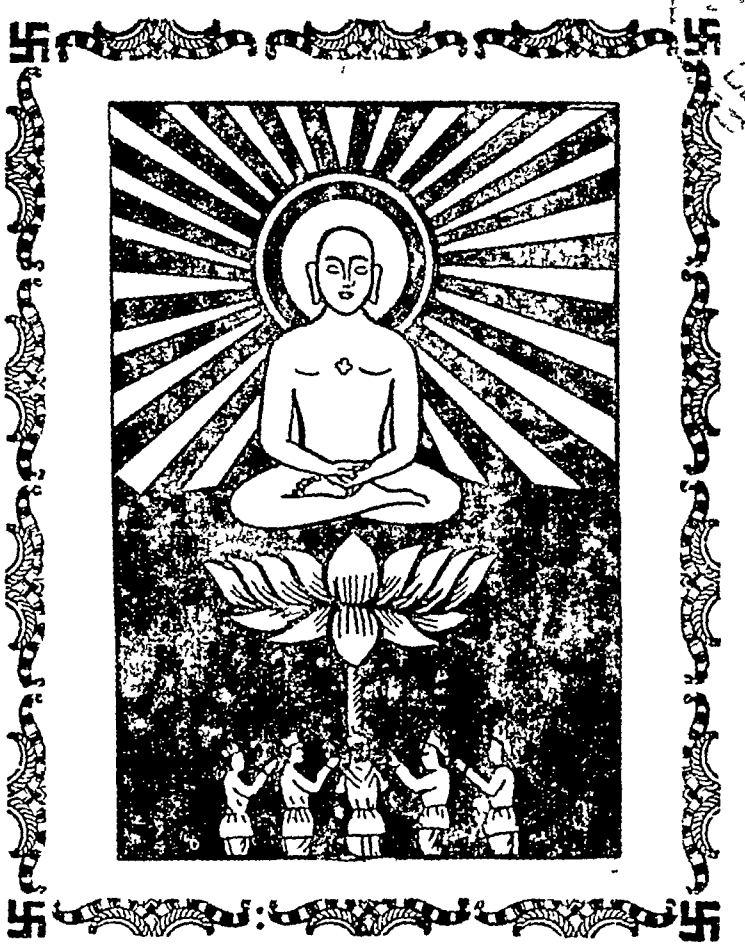
संग्रह कर्ता

क्षुल्लक १०५ श्री आदिसागरजी महाराज (पंजाब)

(शिष्य - मुनि श्री १०८ विमलसागर जी महाराज)

प्रकाशक :—

दिगम्बर जैन समाज

रेवाड़ी (हरियाणा)

प्रथमवार	कार्तिक अमावस्या अन्त	मूल्य
१०००	वीर वि० स० २५००	अध्ययन

—: अनुक्रमणिका :—

दो शब्द

परमपूज्य वयोवृद्ध ज्ञानमूर्ति धर्मदिवाकर श्री १०८ आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की वंदना करते समय कोई भी मुमुक्षु संघ के अविरत अध्ययन-अध्यापन, तत्वचिंतन, धर्मचर्य्या व साहित्य-सृजन के भव्य एवं मनोज्ञ वातावरण से अभिभूत हुए बिना नहीं रहता। ऐसे स्वस्थ व सात्विक वातावरण में विद्यमान पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक श्री आदिसागर जी महाराज ने जैन परम्परा में चली आई किंचित कथाएं संक्षेप में सरल भाषा में लिपिबद्ध कर लीं।

क्षुल्लक जी महाराज अहिन्दी भाषी है। देश के विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करने से हिन्दी का साधारण अभ्यास हो जाने पर भी भाषा शैथिल्य का होना स्वभाविक था। उनकी भावना थी कि ये कहानियां प्रकाशित होवें और पाठक इनसे प्रेरणा लेकर आत्म कल्याण में लग सकें। प्रकाशन के लिये यह आवश्यक था कि उनको आधुनिक भाषा शैली में संवारा जाये।

मेरे बड़े भ्राता गुरुभक्त श्रीयुत मिलापचन्द जी पाटनी जब संघ की वंदनार्थ किशनगढ पधारे तो महाराज श्री साहब ने उनके सामने अपनी यह समस्या रखी। भाई साहब क्षुल्लक जी की अनुमति पाकर ये कहानियां सुधार हेतु मेरे पास ले आये।

मैं तब सिरोही जिलान्तर्गत कालन्द्री ग्राम से स्थानान्तरित होकर अजमेर लौटा ही था। भाईसाहब ने जब मेरे सामने यह प्रस्ताव रखा, तो मैंने इस पुण्य कार्य के लिए सहर्ष स्वीकृति दे दी।

प्रस्तुत कुछ कहानियों में के मूलभाव को बनाये रखते हुए उन्हें आधुनिक भाषा शैली में ढालने हेतु कहानियों को पुनः नये सिरे से लिखा गया। नये रूप में कहानियों को प्रस्तुत करते हुए हम संतोष का अनुभव करते हैं।

मेरे लिए यह प्रथम प्रयास है। अस्तुः ये कहानियां भविक भव्य जनों को वीतराग धर्म के पावन पथ की ओर अभिमुख कर सकी, तो श्री क्षुल्लक जी महाराज की भावना सफल होगी और मैं भी अपने प्रयास को सार्थक समझूंगा।

विनीत :-

घसेटी बाजार, अजमेर

ताराचन्द जैन एम० ए० बी० एड० साहित्यरत्न

वसंत पंचमी वीर नि० सं० २४९८

पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी के
शुभ अवसर पर आचार्य रत्न १०८ श्री
देशभूषण जी महाराज का
शुभागमन

भव सागर में भटक रहा हू, कर दो नैया पार।
गुरुजी कर दो नैया पार॥

नाथ! तुम्हारा दर्शन पाकर भाग हमारे जागे।
परम ज्योति साकार खड़ी है, इन नयन के आगे।
जिसकी तुमने बाह पकड ली पहुच गये उस पार।
गुरुजी कर दो नैया पार॥

छूकर चरण हुआ पावन, नगरी का कोना कोना।
पारस को छूने से लोहा भी बन जाता सोना।
नयन बिछाये है स्वागत को, हर आँगन हर द्वार।
गुरुजी कर दो नैया पार॥

कर्मो से दुर्बल काया, सिर भारी पाप गठरिया।
राह अजानी पग डगमग है, लम्बी बहुत डगरिया।
बोझा हलका कर दो मेरा, इतनी सुनो पुकार।
गुरुजी कर दो नैया पार॥

यह कैसे हो, सूरज आगे अधियारा रह पाये।
गगा घर पर आये फिर कोई प्यासा रह जाये।
मिले चरण की धूल तुम्हारी, कैसे न हो उद्धार।
गुरुजी कर दो नैया पार॥

पच कल्याणक के अवसर पर शुभ आगमन तुम्हारा
यहा बहेगी धर्म, ज्ञान, अमृत की पावन धारा।
होगा पूर्ण बिना बाधा के, यह मगल त्यौहार।
गुरुजी कर दो बेड़ा पार॥

विनयावनत :-
शेखर जैन

卐 श्री वीर 卐

रेवाड़ी (हरियाणा) का

जैन पंच कल्याणक महोत्सव

वसन्त के उल्लासमय मधुर प्रारम्भ में ८ से १२ फरवरी तक रेवाड़ी नगर स्थानीय नागरिकों, ग्रामीण जनता एवं बाहर से आने वाले लोगों के लिए आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बना रहा। सुसज्जित बाजार, नवीन रंग बिरंगे परिधान धारण किए हुए उल्लास उमंग से भरे बाल-युवा-वृद्ध-नर नारी जिनके प्रफुल्लित हृदय की झलक मुस्कान के रूप में प्रस्फुटित हो रही थी। हर तरफ चहल पहल का वातावरण बना हुआ था। यह उल्लास था पंच कल्याणक महोत्सव का।

जैन हाई स्कूल के प्रांगण में बना विशाल पंडाल और मंच सबके लिए तीर्थ स्थल बना हुआ था। रात्रि के समय तो इसकी शोभा बिजली की रंग बिरंगी ट्यूबों, झालरों एवं बल्बों से की गई रोशनी में इन्द्र की अमरावती के समान लगती थी।

श्री दिगम्बर जैन समाज रेवाड़ी ने श्री जैन मन्दिर

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी
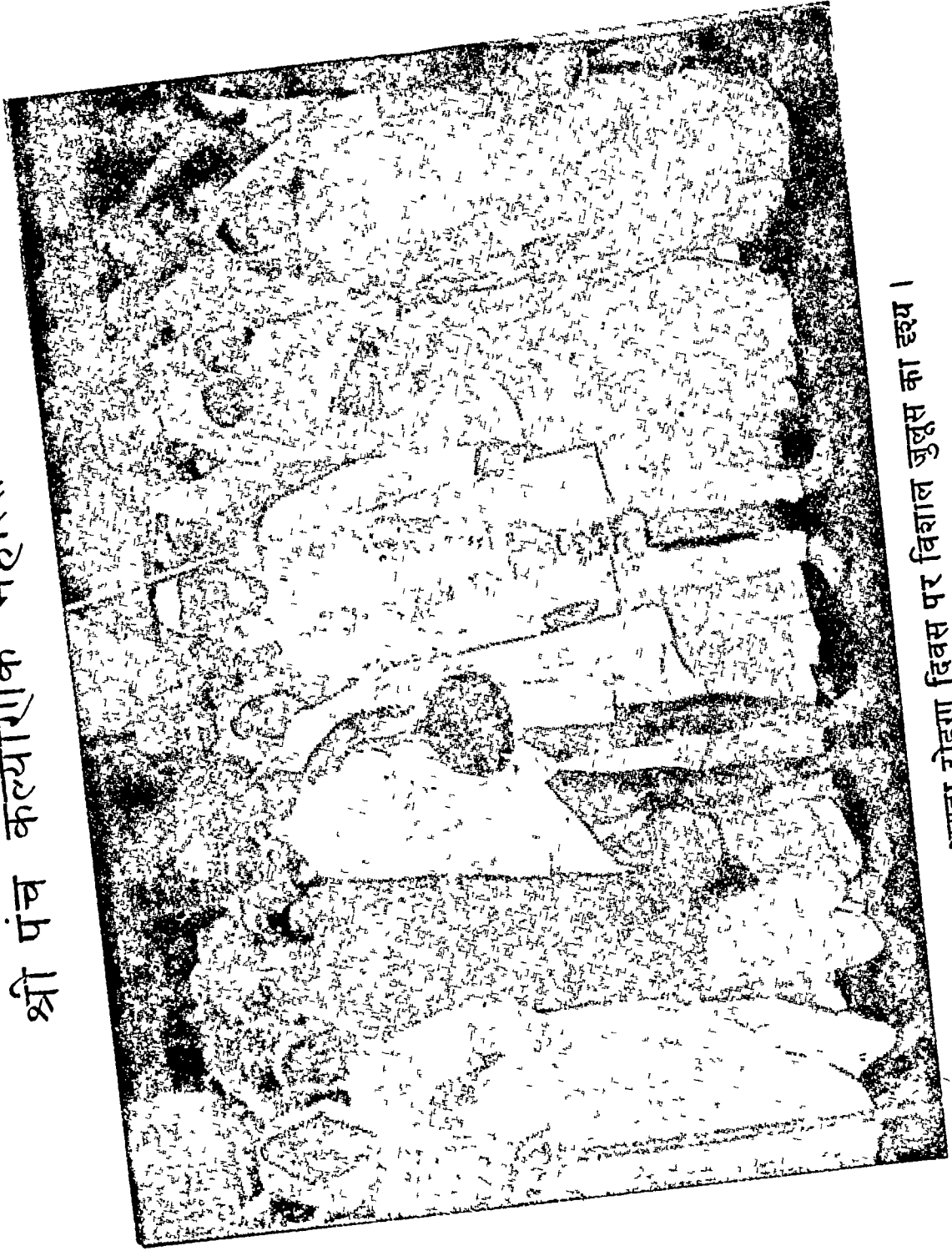
झण्डा रोहण दिवस पर विशाल जुलूस का दृश्य ।

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी

झण्डारोहण का भव्य दृश्य

निसिया जी में दो वर्ष पूर्व संगमरमर के विशाल मानस्तंभ का निर्माण कराया था। स्थानीय जैन-समाज को इस मानस्तम्भ के निर्माण की प्रेरणा पूज्य मुनिराज १०८ श्री विमल सागर जी तथा पूज्य १०८ श्री अजित सागर जी से मिली। महाराज श्री का संघ सहित मंगलमय पदार्पण अलवर से रेवाड़ी चैत्र कृष्णा ५ सं० २०२५ में हुआ। चैत्र शुक्ला १३ सं० २०२५ में इसी वर्ष रेवाड़ी नगर में एक अभूत पूर्व ऐलक-दीक्षा-समारोह सम्पन्न हुआ। यह दीक्षा समारोह श्री निशिया जी में ही सम्पन्न हुआ।

दिनांक २५-१-६६ माघ वदी १२ शुक्रवार संम्वत् २०२५ में पूज्य १०५ क्षुल्लक आदि सागर जी महाराज के तत्त्वावधान में श्री पं० ताराचन्द्र जी शास्त्री ने प्रातः ११ बजे मानस्तम्भ की नींव रखे जाने का शास्त्रोक्त विधि विधान सम्पन्न करवाया। तदनन्तर आसौज सं. २०२६ को ब्रहमचारी बनवारी लाल जी के कर-कमलों द्वारा इस मानस्तम्भ का शिलारोपण समारोह मध्यान्हकाल में सम्पन्न हुआ। समग्र जैन समाज ने इन समारोहों में भाग लिया।

गत वर्ष जयपुर से दिल्ली की ओर १०८ परम पूज्य मुनि वर्द्धमान सागर जी, १०८ परम पूज्य मुनि सम्भव सागर जी तथा पूज्य माता जी आर्यिका विदुषी १०५ ज्ञानमती का मंगल मय विहार हुआ। सौभाग्य से इन साधु-सन्त महात्माओं का इस अवसर पर रेवाड़ी नगर में भी पदार्पण हुआ और इनकी

सतत पुण्य प्रेरणा के फलस्वरुप मानस्तम्भ की पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न होने का यथा शीघ्र समय आगया। इसी अवसर पर जैन समाज रेवाड़ी ने पूज्य क्षुल्लक १०५ आदि सागर जी महाराज से भी इस महोत्सव में पधारने की प्रार्थना की फलस्वरुप महाराज श्री महाराज नसीराबाद से यहां पधारे।

उसकी प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर इस पंच कल्याणक महोत्सव का आयोजन किया गया। ता० १९-१-७३ को ध्वजरोपण एवं ध्वजारोहण के शुभ मुहूर्त से इसकी तैयारियों का श्री गणेश हुआ। जैन समाज का प्रत्येक बाल वृद्ध युवा इस पुनीत यज्ञ की तैयारी में जुट गया। एक अनिवर्चनीय उत्साह भरा था प्रत्येक के हृदय में, जो इस पुनीत कार्य को अधिक से अधिक सुन्दर और सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील था।

सबसे बड़ा सौभाग्य था इस शुभ अवसर पर, परम पूज्य तपोनिधि श्रमण संस्कृति के प्रतीक १०८ आचार्य श्री देश-भूषण जी महाराज का शुभागमन। तप और त्याग की साकार मूर्ति के दर्शन करके जन-जन कृतार्थ हो उठा। आचार्य श्री के सानिन्ध्य एवं मंगलमयी वरद छाया में समस्त कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुए। उनके उपदेशामृत का पान कर जन मानस की तृषित आत्मा शाति प्राप्त कर सकी।

दिनाङ्क ८ से १२ फरवरी तक पांच दिन प्रतिष्ठाचार्य पं० शिखर चन्द्र जी जैन भिण्ड वालों के तत्वावधान में

जिनेन्द्र भगवान के १-गर्भ, २-जन्म, ३-तप, ४-ज्ञान, ५-मोक्ष, (निर्वाण) इन पांचों कल्याणकों का जोप, पूजन विधि विधान चलता रहा।

गर्भ कल्याणक

८ फरवरी को भगवान का गर्भ में आना, इन्द्र द्वारा कुबेर को अयोध्या की सुन्दर रचना करने का आदेश देना, रत्नवृष्टि, इन्द्र दरबार, अयोध्या में महाराज नाभिराय का दरबार, सौधर्म इन्द्र का अपने इन्द्र मंडल सहित महाराजा नाभिराय के दरबार में आगमन। भगवान की माता की सेवा के लिए देवियों की नियुक्ति करना, माता द्वारा रात्रि को १६ स्वप्न दर्शन आदि की मनोहारी झांकिया प्रस्तुय की गई।

।-।-। जन्म कल्याणक ।-।-।

९ फरवरी को प्रातः भगवान का जन्म होना, सौधर्म इन्द्र का ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर अयोध्या नगरी की प्रदक्षिणा देना, इन्द्राणी का माता मरूदेवी के प्रसूति गृह में जाकर मायमयी शिशु माता के पास रख कर भगवान को वहां से लाकर इन्द्र को देना, तत्पश्चात बड़ी धूमधाम से पांडुक शिला पर ले जाकर १००८ कलशों से आनन्द विभोर होकर ताण्डव नृत्य करना।

यात्रा का यह जलूस रेवाड़ी में अविस्मरणीय रहेगा। नगर के व्यापारी वर्ग ने बाजारों को अनुपम सुसज्जित करके अपने स्नेहपूर्ण सौहार्द्र का परिचय दिया। स्थान स्थान पर द्वार बनाये हुए थे, प्रत्येक बाजार जन समूह से खचाखच भरा पड़ा था। जिधर भी देखो जन समूह उमड़ रहा था। जिया बैण्ड व नगर के अन्य बैण्डों के अतिरिक्त आकर्षक वेषभूषा में जैन गर्ल्ज हाई स्कूल व जैन हाई स्कूल के बैण्ड मधुर धुनें बजाते हुए चल रहे थे। प्रभाव शाली व आकर्षक झांकियाँ, कुबेर; सौधर्म, ईशान एवं इन्द्राणियों को अपनी पीठ पर शोभित कर चलने वाले सुसज्जित गजराज तथा अन्य इन्द्रों के सुसज्जित रथ आदि मन को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। नीचे से जयजयकार की ध्वनि अम्बर की ओर जा रही थी, ऊपर आकाश से वायुयान द्वारा पुष्प वर्षा हो रही थी। कितना मनमोहक एवं नयनाभिराम दृश्य था। लगता था कि रेवाड़ी नगरी कुबेर द्वारा सुसज्जित की हुई अयोध्या नगरी ही हो। पांडुक शिला पर भगवान के अभिषेक के समय भी विशाल जन समुदाय का जयनाद गूंज रहा था। और आकाश से पुष्प वर्षा हो रही थी। पूज्य आचार्य १०८ श्री देशभूषण जी महाराज ने अपने प्रवचन में भगवान के जन्म दिवस का महत्व बताया।

रात्रि को पालना के समय जैन गर्ल्ज हाई स्कूल की बालिकाओं द्वारा पालना, लोरी एवं बधाई के रूप में विविध प्रदेशों के मनमोहक एवं प्रभावशाली लोकनृत्य

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी
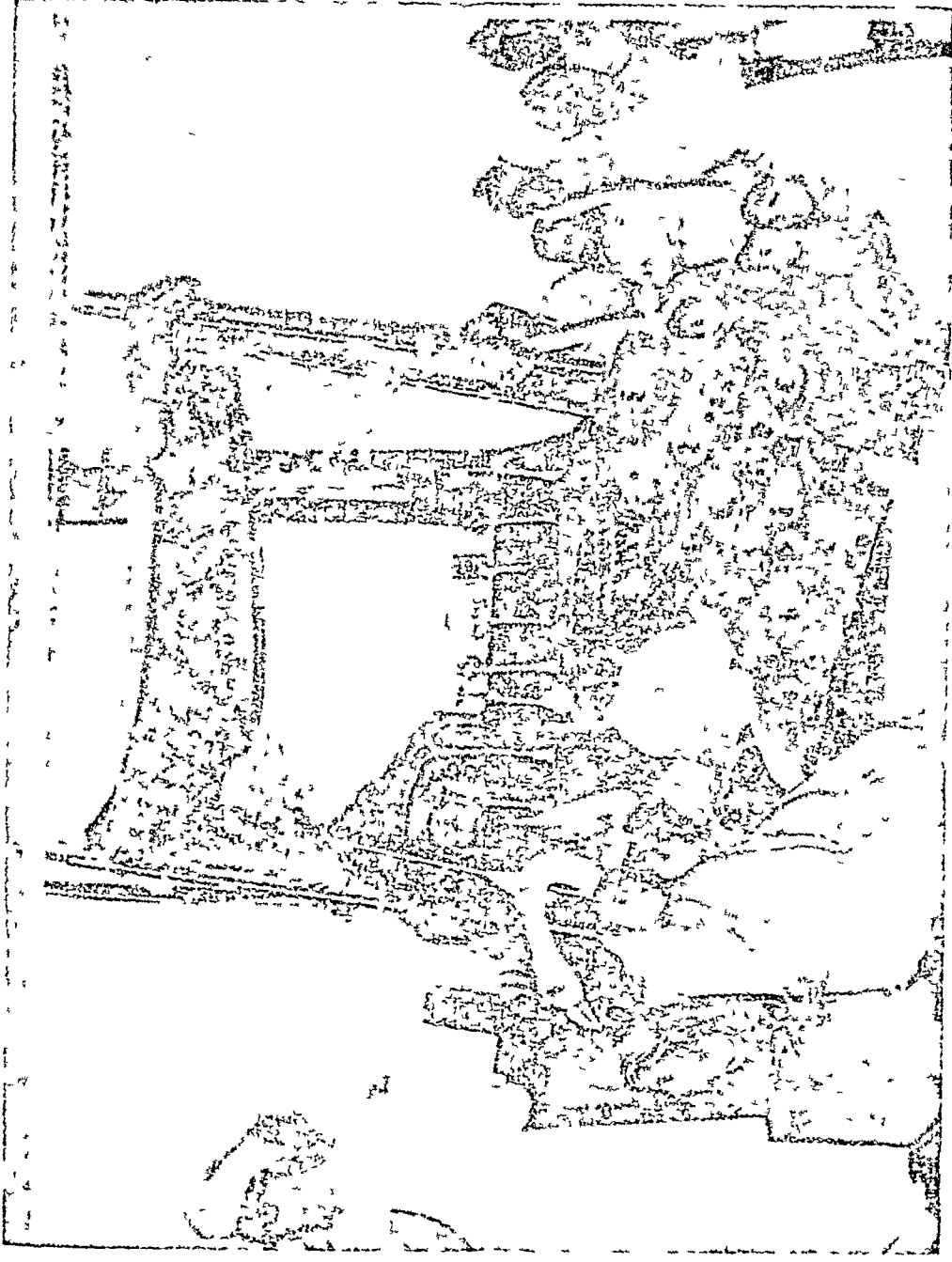
गर्भ कल्याणक:—
आठ देविया भगवान की माता की सेवा कर रही है।

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी
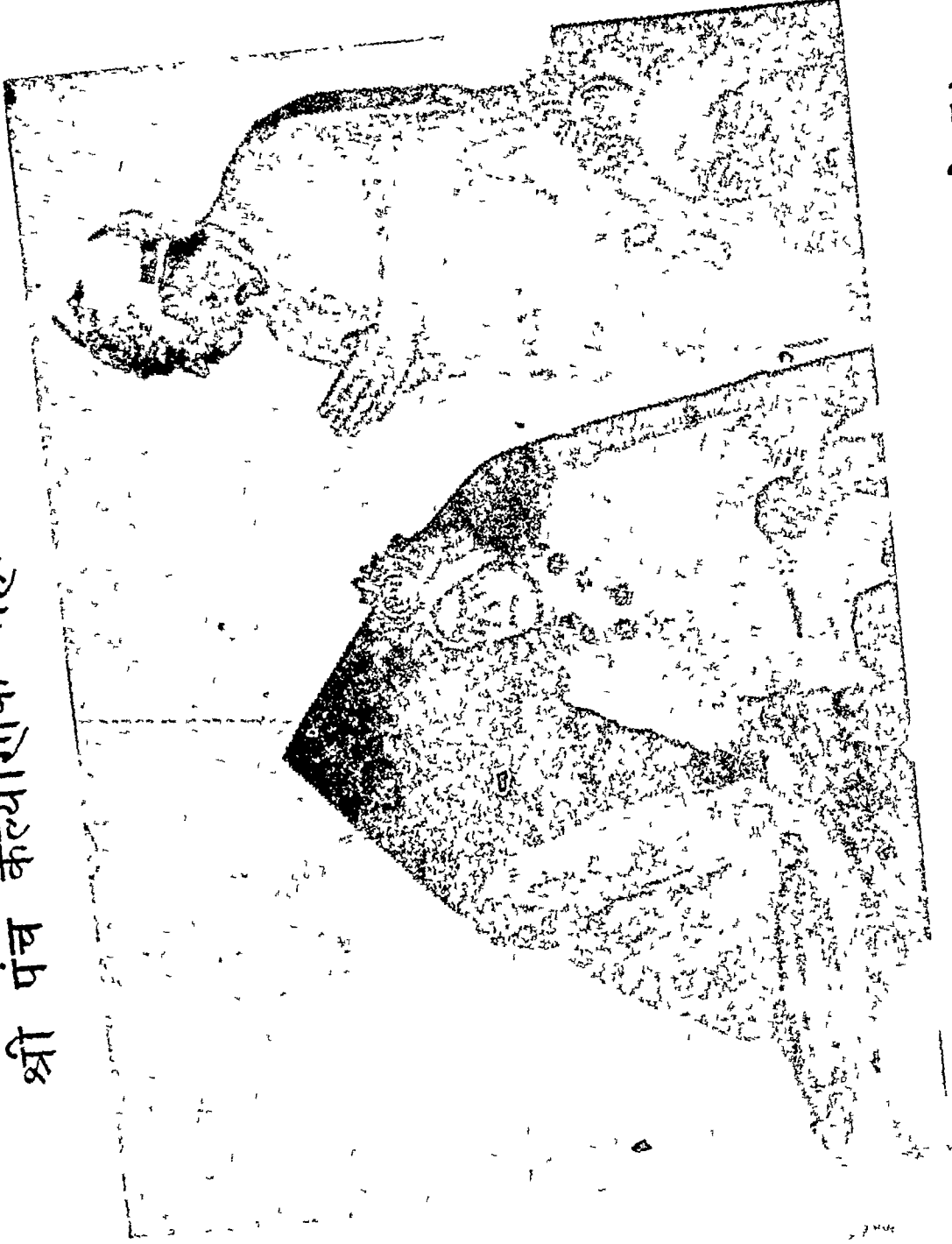
गर्भ कल्याणक —
सौधर्म इन्द्र महाराज नाभिराय और महारानी मरु देवी की पूजा करते हुए।

प्रस्तुत किये गए जिन्हें देखकर दर्शक भक्ति और आनन्द से विभोर होकर झूम उठे। वीर संगीत मंडल जयपुर के कलाकारों की ओर से भक्ति पूर्ण भजन व इन्द्र नृत्य प्रस्तुत किए गए जो अत्यन्त प्रभावशाली थे।

—: तप कल्याणक :—

१० फरवरी का दिन तप कल्याणक का दिन था। यही वह कल्याणक हैं, जिसको जैन सिद्धान्त में सर्वाधिक महत्व दिया गया है। अर्थात् भरे यौवन में राज, सिंहासन, नारी, पुत्र, परिवार, धन ऐश्वर्य आदि को त्याग कर सबसे नाता तोड़कर संसार से विरक्त होकर योग के कंटकमय पथ पर अग्रसर होता फूलों की सेज त्याग कर शूलों का पथ अपनाना। आत्म कल्याण के लिए सभी सुखों को परित्याग किया।

भगवान ऋषभदेव का राज्याभिषेक होना। समस्त राजाओं द्वारा भेंट दी गई और दरबार में होने वाले नीलांजना नामक अप्सरा के नृत्य व उसकी आयु समाप्त हो जाने पर उसके विलय का दृश्य देखकर भगवान को संसार की असारता का भान हुआ। भगवान ने सर्वस्व त्यागकर वन में जाकर दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण की।

दीक्षा समारोह के अवसर पर आचार्य १०८ श्री देशभूषण जी महाराज का सारगर्भित प्रवचन हुआ जिसमें आचार्य श्री ने योग की महिमा, संसार की असारता, दिगम्बरत्व का महत्व एवं आत्म कल्याण मार्ग का सुन्दर विवेचन किया।

रात्रि को जैन गर्ल्ज हाई स्कूल की बालिकाओं द्वारा भगवान आदिनाथ का वैराग्य संगीत रूपक एवं जैन हाई स्कूल के छात्रों द्वारा मैनासुन्दरी के सिद्ध चक्र विधान एकांकी का प्रदर्शन देखकर विशाल जन समुदाय भक्ति विभोर हो उठा।

।। ज्ञान कल्याणक ।।

११ फरवरी को ज्ञान कल्याणक हुआ। जैन तीर्थंकरों ने संसार त्यागकर घोर तप करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और आत्म कल्याण के साथ साथ विश्व कल्याण के लिए प्राणि मात्र को सत्य, अहिंसा एवं मानवता का अमृतमयी सन्देश दिया।

किसी भी युगपुरूष की अमर वाणी देशकाल एवं परिस्थिति की सीमाओं को लांघ कर प्राणिमात्र के संताप शान्ति करती हुई अजय धारा की तरह सतत प्रभावित रहती है। यह लोक कल्याण, लोकाराधन, विश्व बंधुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम का मार्ग प्रशस्त करती हुई शाश्वत है।

मुनिराज ऋषभदेव ने घोर तपस्या की, १२ मास पश्चात अक्षय तृतीया को महाराज श्रेणिक ने उन्हें प्रथम आहार दिया अनेक प्रकार के कष्ठ सहन करते हुए वे कठोर तप करते रहे। तब फाल्गुन कृष्णा एकादशी को, जबकि वे एक वट वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे उन्हें दिव्य केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तीनों काल, तीनों लोक उनके ज्ञान में एक साथ झलकने लगे। वे साक्षात परमात्मा बन गये। नर से नारायण बन गये। उन्हें जिस वस्तु की खोज थी वह प्राप्त हो गई। तब इन्द्रादि देवों ने समोशरण की रचना की। भगवान ने प्राणि मात्र के

कल्याण के लिये अहिंसा सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य का कल्याणकारी उपदेश दिया।

रात्रि को मंच पर जैन हाई स्कूल व जैन गर्ल्ज़ हाई स्कूल द्वारा अहिंसा की महत्ता पर सुन्दर एकांकी व काव्य रूपक प्रस्तुत किये गये। पं० विनयकुमार जी पथिक (मथुरा) एवं मा० प्रदीपकुमार का मधुर व प्रभवशाली संगीत हुआ।

—: मोक्ष कल्याण :—

अनेक स्थान पर विहार करते हुए और संसार के प्राणियों को कल्याण का मार्ग बताते हुए उन्हें अनन्त सुख (मुक्ति मार्ग) का रहस्य समझाते हुए भगवान ऋषभदेव ने माघ कृष्णा चर्तुदशी की प्रातःकाल कैलाश पर्वत से सिद्ध पद प्राप्त किया वे आवागमन से मुक्त हो गये।

मंच पर प्रातः ६-३० बजे कैलाश पर्वत से भगवान के मोक्ष गमन की मनोहारी झांकी प्रस्तुत की गई। दोपहर को २ बजे श्री जी को रथ में विराजमान करके रथ यात्रा का जलूस नगर के प्रमुख बाजारों में से होता हुआ श्री दि० जैन बड़े मन्दिर जी पर पहुँचा।

—: मुख्य अतिथिगण :—

इस पुनीत अवसर पर बाहर से पधारे महानुभावों में श्रीमती ओमप्रभा जी जैन भूतपूर्व वित्तमंत्री हरियाणा, ला० प्रेमचन्द जी जैन (जैना वाच कम्पनी दिल्ली) जैन संदेश के व्याख्याता पं० कैलाशचन्द जी शास्त्री वाराणसी, जैन संदेश पं० लाल बहादुर जी जैनदर्शन शास्त्री गाँधीनगर दिल्ली, श्री

ताराचन्दजी प्रेमी फारोजपुर झिरका, पं० विनयकुमार जी पथिक (मथुरा) मा० प्रदीपकुमार गन्धर्व (भरतपुर) एवं श्री वीर संगीत मण्डल जयपुर का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

: सम्मेलन :

इस अवसर पर दिनांक ११ फरवरी ७३ को दोपहर ११ बजे से आदरणीय बाबू महावीरप्रसाद जी जैन हिसार की अध्यक्षता में अखिल भारतवर्षीय दि० जैन परिषद एवम् आलइन्डिया दिगम्बर जैन भगवान महावीर का २५००वा निर्वाण महोत्सव सोसायटी के हिमाचल, पंजाब, हरियाणा एवं दिल्ली के क्षेत्रीय सम्मेलन हुए। जिनमें अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया गया।

पंच कल्याणक महोत्सव निर्विघ्न एवं सानन्द सम्पन्न हुआ। परमपूज्य आचार्य १०८ श्री देशभूषण जी महाराज की वरद छत्र छाया में हुए इस महोत्सव का बाहर से पधारे जैन भाइयों व रेवाड़ी नगर के तमाम सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा ग्रामीण जनता ने अवलोकन किया और सराहना की उल्लेखनीय बात यह है कि इन पांच दिनों नगर के तमाम बूचड़खाने बन्द कराये गये। जिससे हजारों जीवों की प्राण रक्षा हुई जैन समाज के प्रधान श्री धन्नामल जी जैन (मैनेजिंग डायरेक्टर— अग्रवाल मैटल वर्क्स प्रा० लि० रेवाड़ी) के पथ प्रदर्शन व कुशल निर्देशन सभी कार्यकर्ताओं व समस्त जैन समाज का अथक परिणाम ही इस महोत्सव की सफलता का आधार है।

शेखर जैन

अग्रवाल मैटल वर्क्स प्रा० लि०
रेवाडी (हरियाणा)

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी

भगवान को पाडुक शिला पर लेजाते हुए सौधर्म इन्द्र एवं इन्द्राणी विशाल जलूस का दृश्य

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी

जन्म कल्याणक — भगवान के पालना की मनोहारी भव्य झांकी ।

धर्म कथा संग्रह

संग्रह कर्ता क्षुल्लक श्री १०५ आदि सागर जी महाराज
शिष्य स्वर्गस्थ मुनि श्री १०८ विमल सागर जी महाराज

---:: लव-अंकुश ::---

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र ने महारानी सीता को लोकापवाद के कारण, अपने सारथी के हाथों वन में भिजवा दिया। उस समय महारानी सीता गर्भवती थीं। वन स्थित एक आश्रम में उसने जुड़वां दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनका नाम लव व अंकुश रखा। जब यह दोनों भाई यौवनावस्था को प्राप्त हुए, तो एक बार युद्धाभ्यास के लिए गये। वहां से लौटकर जब वे घर आये तो अपने नित्य नियमानुसार अपनी माता महारानी सीता को नमस्कार करने पहुंचे। वहां महारानी सीता के निकट विख्यात, आकाशगामी श्री नारद जी को बैठे देखा। उन्होंने प्रथम माता को प्रणाम करने के बाद श्री नारद जी को भी नमस्कार किया श्री नारद जी ने दोनों भाइयों को आशीर्वाद देते हुए कहा कि हे पुत्रों! तुम भी राम-लक्ष्मण के समान बनो।

इस प्रकार के श्री नारद जी के वचनों को सुन आश्चर्य चकित होते हुए दोनों भाइयों ने श्री नारद जी से विनयपूर्वक कहा कि आप कृपा करके यह बतलाओ कि श्री राम-लक्ष्मण कौन हैं? इस पर श्री नारद जी बोले कि अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र जी तुम्हारे पिता हैं व लक्ष्मण जी उनके लघु भ्राता हैं। लोकापवाद के कारण श्री रामचन्द्र जी ने तुम्हारी माता महारानी सीता को वन में भिजवा दिया। इस लोकापवाद का कारण यह था कि जब श्री रामचन्द्र लक्ष्मण

वनवास का समय बिता रहे थे, उस समय लंका का अधिपति राजा रावण महारानी सीता को धोखे से चुराकर ले गया था। इस चोरी का रहस्य विदित होने पर श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव' हनुमान आदि विद्याधर राजाओं को साथ लेकर लंका पर चढाई की एवं राजा रावण युद्ध में नारायण लच्मण के द्वारा मारा गया और महारानी सीता पुनः श्री रामचन्द्र को मिली। अतः अयोध्यावासियों ने वह विषय श्री रामचन्द्र जी के सन्मुख रखा कि महारानी सीता एक पर पुरुप के यहां (राजा रावण के घर) इतने दिनों तक रही और उसकी पवित्रता पर आक्षेप किया और यही अपवाद का विषय था। चूकि श्री रामचन्द्र जी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। लोक कल्याण हेतु उन्होंने तुम्हारी माता महारानी सीता को वन में भिजवा दिया। उस समय तुम दोनों गर्भ में थे। अस्तु वन मे तुम दोनों का जन्म हुआ। यह सब हाल सुनकर उन दोनों भाइयों को आवेश आ गया और वे अपनी माता के कष्टों का कारण जानकर श्री रामचन्द्र लच्मण से युद्ध करने को उतारू हो गये। यह जानकर महारानी सीता चिन्तातुर हो गई। उसने बहुत रोका, परन्तु वे वीर बालक कब रुकने वाले थे? वे तो युद्ध करने को चल पड़े।

जब श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण को अयोध्या पर चढाई के समाचार विदित हुए तो उन्होंने सुग्रीव, हनुमान विभीषण आदि को बुला लिया और युद्ध क्षेत्र में आ डटे। खूब घमासान युद्ध हुआ। श्री लच्मण जी को चक्र तक चलाना पडा परन्तु यह नियम है कि चक्र गोत्रज पर नहीं चलता है अतः चक्र लव-अंकुश की प्रदक्षिणा देकर लौट आया। सभी विस्मित हुए। नारद जी जो सीता के साथ आकाश में विमान में

बैठे, यह दृश्य देख रहे थे। पृथ्वी पर उतरकर श्री रामचन्द्र लक्ष्मण के सन्मुख आये और उन्हें बतलाया कि यह दोनों वीर और कोई नहीं अपितु आपके ही पुत्ररत्न हैं, जो कि महारानी सीता की कूख से वन में जन्मे हैं। इस समाचार से सभी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और युद्ध बन्द कर दिया गया। बिछड़े हुयों का पुनः मिलन हुआ।

संसार की असारता को समझ सीताजी को वैराग्य उपजा और वह दीक्षा लेकर आर्यिका बन घोर तपश्चरण करती हुई अन्त में मरकर सोलवें स्वर्ग सिधारीं।

लव-अंकुश अपने शील सौन्दर्य से सभी परिजनों व प्रजाजनों को मुग्ध करते हुए यौवन की ओर बढ़ चले। श्री राम ने उन्हें अपना राज्य दे दिया। श्री लक्ष्मण की एक दिन अचानक मृत्यु होने से उत्पन्न मोह से छुटकारा पा श्री राम ने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर घोर तपश्चरण से कर्मों को समूल नष्ट कर मोक्षपद प्राप्त कर लिया।

लव व अंकुश भी अपने पिता के अनुसार ही प्रजा का पुत्रवत पालन करते हुए धर्मपूर्वक शासन करने लगे। अपने बुद्धि कौशल व शौर्य पराक्रम से उन्होंने अपने कुल का गौरव बढ़ाया। अन्त में वह दोनों भाई भी मुक्त हुए।

महासती राजुल

भोजवंशी महाराज उग्रसेन की लाडली पुत्री राजुल का बड़े ही लाड़-प्यार से पालन पोषण हुआ। बाल्यकाल में ही उसके सौन्दर्य की कीर्ति दिग्दिगन्तर में फैल रही थी। वह सुकुमारी अपने शील और सौन्दर्य से सभी का मन मोह लेती थी। अल्पकाल में ही उसने शस्त्र और शास्त्र विद्या में निपुणता प्राप्त कर ली। अद्भुत प्रतिभा और सौन्दर्य के मणिकांचन संयोग से लोग कल्पना करते थे कि वह किसी चक्रवर्ती की पटरानी बनेगी।

किशोरावस्था में पदार्पण करते ही राजुल ने महाराज समुद्रविजय के सुपुत्र नेमिकुमार के शील, शक्ति व सौन्दर्य की महिमा सुनकर उन्हें मनसा वरण कर लिया। महाराज उग्रसेन ने जब श्रीकृष्ण जी के पास नेमिकुमार से राजुल के विवाह का प्रस्ताव भेजा और श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार की स्वीकृति प्राप्त कर उसे स्वीकार कर लिया। बड़े धूमधाम के साथ बारात लेकर नेमिकुमार ने विवाह के लिए प्रस्थान किया।

राजुल को जब यह समाचार मिला, तो उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। सखियों ने उसे घेर लिया। विविध प्रकार से साज शृंगार करती हुई वे उससे ठिठोलियां करती जातीं थीं और राजुल अपने मन भावन प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा

में सुध बुध भूल गई थी। वह प्रिय मिलन के सुखद स्वप्नों में खो गई थी। भव-भव के प्रियतम से उसका पुनर्मिलन होने वाला था। उसके रोम रोम में उमंगें हिलोरे मार रही थीं। उसका यौवन उफनती नदी के समान उखड़ रहा था। उस समय वह प्रेम और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति सी प्रतीत हो रही थी। चारों ओर हर्षोल्लास का वातावरण छाया हुआ था। महाराज स्वयं बारात के स्वागत की व्यवस्था के निरीक्षण में जुटे हुए थे। महारानी नेमिकुमार के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। अन्तःपुर की साज सज्जा अति ही रमणीय थी। संगति की मधुर स्वर लहरियों से वायुमन्डल प्रतिध्वनित हो रहा था। नगर विभिन्न रंगों के प्रकाश से जगमगा रहा था। सारा नगर हर्षोन्माद में लीन था।

तभी किसी ने आकर सूचना दी कि दयालु श्री नेमिकुमार पशुओं की करुण चीत्कार सुनकर वन में जाकर दिगम्बर मुनि दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण के लिए उद्यत हो गये। बिजली की भांति यह समाचार सर्वत्र फैल गया। हर्षोल्लास का वातावरण शोक व उदासी में बदल गया। सब ओर हाहा कार मच गया।

राजुल ने जब यह सुना तो वह सहसा मूर्छित होकर गिर पड़ी सुध आने पर उसने भी प्रिय के पद चिन्हों पर चलने की ठान ली। वह भी प्रिय के साथ ही आर्यिका दीक्षा लेने को उद्यत हो गई।

माता-पिता, बन्धु-बान्धवों व सहेलियों ने बहुत समझाया 'तुम्हारा यह सुकुमार यौवनमयी शरीर दीक्षा के योग्य नहीं।' किन्तु उसका निश्चय अटल था। वज्रादपि कठोराणि मृदूनि

कुसुमादपि' की उक्ति ऐसी ललनाओं के लिए ही तो कही गई है।

संसार की सभी सुखोपभोग सामग्रियों को ठुकरा कर पारिवारिक स्नेह बन्धनों को तोडकर वह उदासीनता और वैराग्य की प्रतिमूर्ति बन अपने प्रिय के पदचिन्हों पर चल पड़ी। आर्यिका दीक्षा लेकर वह घोर तपश्चरण मे रत हो गई। वह राज नन्दिनी, वन-वासिनी बन गई। गर्मी, सर्दी, बरसात भूख-प्यास को सानन्द झेलती हुई वह संसार के लिए विस्मय-कारिणी बन गई।

नेमिनाथ भगवान के समोशरण में वह आर्यिकाओं में प्रधान हुई। घोर तपश्चरण कर समाधिपूर्वक देह त्याग वह स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देव बनी। वहां से चयकर मनुष्यभव पाकर तपश्चरण कर मुक्तिरमा को वरेगी। ऐसी बाल ब्रह्मचारिणी सती-साध्वी को हमारा शतशः प्रणाम। वह हमारे महिला समाज के लिए महान आदर्श उपस्थित कर प्रेरणा की स्त्रोतस्विनी बनी हुई हैं।

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रवाड़ा
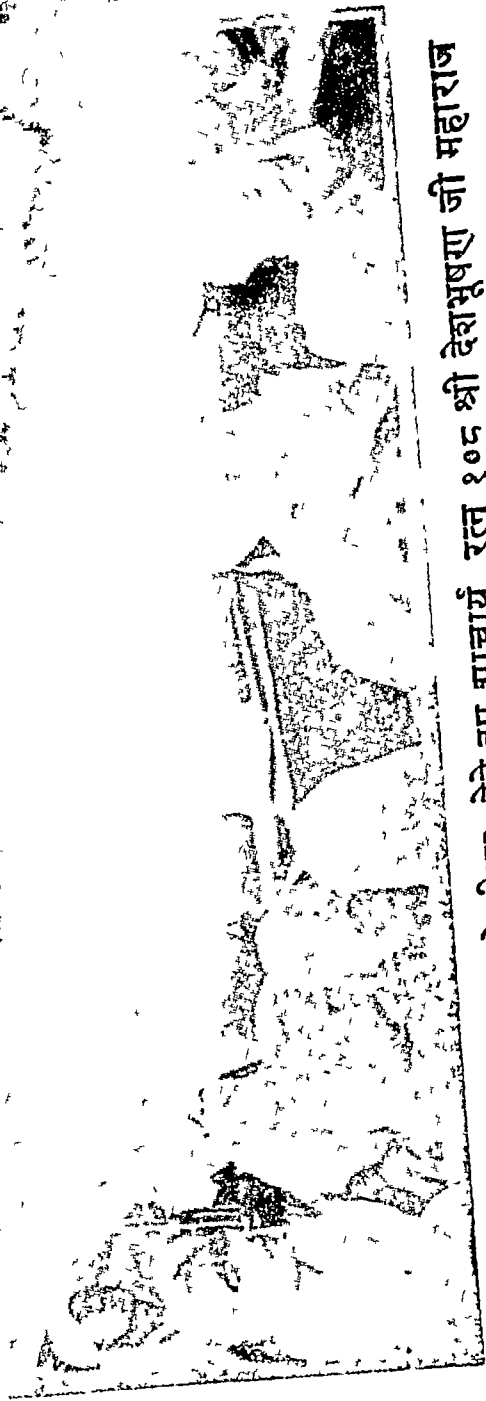
तप कल्याणक मे भगवान को दीक्षा देते हुए आचार्य रत्न १०८ श्री देशभूषण जी महाराज

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी

...कल्याणक में भगवान को दीक्षा देते हुए आचार्य रत्न १०८ श्री देशभूषण जी महाराज

आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषण जी महाराज प्रवचन हेतु एस. डी. आई. ...

—: चक्रवर्ती सगर का वैराग्य :—

सोलहवें स्वर्ग के महान वैभव में महाबल व मणिकेतु नाम के दो देव जल में कमलवत रहते हुए आनन्दपूर्वक समय यापन कर रहे थे। दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी। स्वर्गिक रमणीय नन्दन कानन. मनोरम महल सुखोपभोग की ऐश्वर्यमयी सम्पदा. विलासवती देवांगनाओं के कटाक्ष कोई भी उनको नहीं लुभा पाए।

नंदीश्वर द्वीप आदि के अकृत्रिम चैत्यालयस्थ जिन बिंबों की वन्दना करना, तपोधन मुनियों के दर्शन, शमवशरण में जिनेन्द्र भगवान के कल्याणमयी उपदेशों का श्रवण व तत्वचिंतन ही उनके मनोनुकूल कार्य थे।

वे सदैव मनुष्य भव पाकर, घोर तपश्चरण रत होकर, कर्म-शृंखला काट. संसार के इस जन्म मरण के दारुण दुःख से छुटकारा पाकर मोक्षमहल के अनन्तसुख की कामना किया करते थे। दोनो परस्पर वचन बद्ध थे कि हममें से जो भी पहले मनुष्य भव पायेगा, उसे दूसरा वैराग्योन्मुख करेगा। अनेक वर्षों तक स्वर्ग लोक में रहते हुए देवायु की पूर्णता होने पर महाबल स्वर्ग से चयकर भरतक्षेत्र में सगर नामक चक्रवर्ती हुए।

चक्रवर्ती सगर अपने पूर्वभव की भावनाओं को विसार कर ऐश्वर्य व भोग विलास में लीन हो गये। वे पूर्व संस्कार न जाने कहां विलुप्त हो गये। एक बार सगर भगवान जिनेन्द्र देव के समवशरण में धर्मोपदेश सुनकर अपने राजकीय वैभव विलास के साथ राजधानी की ओर लौट रहे थे। तभी उनके पूर्वभव का मित्र मणिकेतु भी भगवान का दिव्य उपदेश सुनकर समवशरण से अपने लोक को जा रहा था।

सगर को देख उसे स्मरण हो आया कि यह तो मेरे मित्र महाबल का जीव है और यह जो चक्रवर्ती का पद पाकर भोगोपभोग में खो गया है। अतः पूर्व प्रतिज्ञानुसार मुझे इसे सम्बोधकर वैराग्य उपजाकर तपश्चरण में लगाना चाहिये।

अपने कर्तव्य का निर्णयकर मणिमित्र ने योगी का भेष धारणकर सगर को सम्बोधा "संसार क्षण भंगुर है। मनुष्य भव की सार्थकता तो मुनि बनकर घोर तपश्चरण द्वारा कर्मक्षय कर कैवल्य की प्राप्ति कर निर्वाण पाने में है।" किन्तु राज्य सुख में मदान्ध सगर भोगों से विमुख न हुआ। देव भी यह सोचकर कि अभी इस पर उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ेगा, स्वर्ग चला गया और सगर आनन्द सुखोपभोग करते हुए प्रजा का पालन करने लगा।

राजा सगर के साठ हजार पुत्र कैलाश पर्वत पर भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित तीन चौबीस के ७२ जिन चैत्यालयों की सुरक्षा हेतु खाई खोदकर गंगा के प्रवाह

ब्राह्मण वेशधारी देव मणिकेतु के वचनों को सुनकर सगर का मोह भग हो गया। अपने पूर्वभव का स्मरण कर और संसार को क्षण भंगुर जान भागीरथ को राजपाट देकर दिगम्बर मुनि मुद्रा धारण कर घोर तपश्चरण किया।

उधर मणिकेतु ने सगर के साठ हजार पुत्रों को अपने मंत्रबल से पुनः स्वस्थ किया और सगर के वैराग्य का समाचार कह सुनाया। जिसे सुनकर वे सभी सांसारिक विषय वासनाओं से विरक्त होकर दिगम्बरी दीक्षा धारण कर तप करने लगे।

इस प्रकार मणिकेतु ने अपनी मित्रता का सुन्दर पालन कर संसार समुद्र में फंसे अपने मित्र चक्रवर्ती सगर को मुक्ति पथ की ओर अग्रसर कर देवलोक चला गया। मित्र का कर्तव्य ही यह है कि कुमार्ग पर जाने वाले मित्र को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करे।

चक्रवर्ती के अपार वैभव को छोड़कर तपोनिष्ठ सगर आदि मुनि कैवल्य प्राप्त कर मोक्ष हो गये और अपने मनुष्य भव को सार्थक बनाया। परम प्रभु से यही प्रार्थना है कि जिस प्रकार सगर चक्रवर्ती को अनन्त सुख की प्राप्ति हुई उसी प्रकार हम सब को भी हो।

सत्य की विजय

पुराने जमाने में सिंहपुर नामक नगर में राजा सिंहसेन न्यायपूर्वक राज्य करता था। उसके दरबार में अनेक कवि विद्वान व कलाकार थे। धनधान्य से समृद्ध प्रजा भी धर्म-पूर्वक जीवन यापन करती थी। राजदरबार में श्रीभूति नामक एक पुरोहित का उसकी सत्यवादिता के कारण बड़ा सम्मान था। उसकी सत्यवादिता के कारण वह सत्यघोष कहलाता था।

उसी नगर में भद्रमित्र नामक एक धनिक वणिक रहता था। सत्यघोष के साथ उसकी घनिष्ठ मित्रता थी। एक बार धनार्जन के लिए विदेश जाते समय उसने अपने पांच बहुमूल्य पद्मखण्ड रत्न सत्यघोष को विश्वसनीय व सत्यवादी जान उसके पास धरोहर के रूप में रख दिये।

समुद्र पार से अपार स्वर्ण-मणि रत्नादि लेकर सेठ भद्रमित्र अपने देश को लौट रहा था। समुद्र में अचानक तूफान आ जाने से उसका जहाज जल की अथाह धारा में डूब गया। येन केन प्रकारेण सेठ भद्रमित्र बच गया और समुद्र तट पर पहुँच गया।

उसका सारा धन जहाज के साथ ही समुद्र में डूब चुका था। 'कर्म की गति ऐसी ही है'—ऐसा मान धैर्य धारण कर

मार्ग की विभिन्न विपदाओं को भोगता हुआ, भूखा प्यासा सेठ अपने नगर की ओर बढ़ा।

उधर सिंहपुर में भी भद्रमित्र के जहाज के डूबने का समाचार शीघ्रता से चारों ओर फैल गया। सेठ के परिजन धन-माल के साथ सेठ को भी डूबा जान शोक विह्वल हो उठे।

सत्यघोष को भी जब यह समाचार मिला तो उसके मन में भी लोभ उभर आया। उसने सोचा कि सेठ तो डूबकर मर ही गया, अब उन रत्नों को मांगने वाला कौन है? अन्य किसी को यह बात ज्ञात भी न थी। अतः वह अपने आपको उन रत्नों का स्वामी समझ फूला न समाया। किन्तु जब उसके मस्तिष्क में कभी कभी यह विचार भी कौंध जाता कि यदि भद्रमित्र बच गया और कभी यहाँ आकर रत्न मांगने लगा; तो क्या होगा? तब वह किंचित खिन्न हो उठता। भद्रमित्र के बचकर आ जाने का विचार आते ही उसका हृदय धड़कने लगता, चेहरे पर उदासी छा जाती।

एक दिन सत्यघोष को समाचार मिला कि जहाजों के डूब जाने पर भी भद्रमित्र पुण्योदय से बच निकला और तैरता हुआ समुद्र के किनारे आ लगा। वह कुछ ही दिनों में अपने घर लौटने वाला है। यह सुनते ही पुरोहित चिंतातुर हो उठा। उसे चिंता सताने लगी कि अब सेठ आकर रत्न मांगेगा तो वह क्या करेगा? कभी तो वह सोचता कि रत्न मांगने पर वह स्पष्टतः इन्कार कर देगा; किन्तु दूसरे ही क्षण अन्तरात्मा से पुकार उठती कि ऐसा करना तो मित्र के साथ विश्वासघात होगा।

फिर सोचता कि जरा सा झूठ बोलने पर करोड़ों रुपयों के रत्नों का स्वामी बन जाऊंगा। क्यों न मना कर दिया जाय ? किन्तु तत्क्षण ही विचार उठता, मैं जगत में अपनी सत्यवादिता के कारण सत्यघोष कहलाता हूँ, संसार में मेरा बड़ा सम्मान है, इस सम्मान को क्या चंद पाषाण खण्डों पर बलि चढ़ाया जा सकता है ? नहीं, कदापि नहीं।

किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी आंखों मे लोभ की छाया छिटक आती। दुनिया मुझ पर विश्वास करती है, मेरी सत्यवादिता की धाक सबके दिलों में बैठी हुई है। यदि एक बार मैं असत्य भी कह जाऊंगा तो सब मेरी ही बात को सत्य मानेंगे। इस प्रकार मैं एक असत्य बोलने से ही मालामाल हो जाऊंगा।

सत्यघोष ने सोचा—सेठ का पुण्य क्षीण हो चला है, तभी तो उसके जहाज डूबे। अतः उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। फिर सोचता कहीं भंडा फूट ही गया, तो मेरा क्या होगा ? जीवन भर की सत्यवादिता की कमाई मारी जायेगी।

इसी चिन्ता में वह रात दिन घुला जाता था। उसे इस तरह उदास देख उसकी धर्मपत्नी ने एक दिन उससे पूछ ही लिया—'स्वामिन ! इन दिनों न तो आपको भोजन ही भाता है, न नींद ही आती है। आपके मुखार बिन्द पर अविरत खेलती हुई मधुर मुस्कान कहां विलुप्त हो गई ? आखिर आपकी उदासी का कारण क्या है ?

बहुत आग्रह करने पर सत्यघोष बोला—'प्रिय जबसे मैंने भद्रमित्र के जहाज डूबने के समाचार सुने हैं, तभी से मेरा यह

हाल हो गया है।" तब पत्नी बोली 'प्राणनाथ वह तो आपका घनिष्ठ मित्र था, उसके जहाज डूबने पर आपको दुःख होना स्वाभाविक है। किन्तु आपतो स्वयं शास्त्रज्ञ और विद्वान हैं। कर्म की गति ऐसी ही है, यह जान आपको तो उसके सतप्त परिजनों को सांत्वना देनी चाहिये, किन्तु आपतो अपने मित्र की विपत्ति सुन स्वयं ही उदास हो चिन्तासागर में डूब रहे है। आप जैसे विद्वानों को यह शोभा नहीं देता।

पत्नी के मुख से यह वचन सुन सत्यघोष और भी अधीर हो उठा और बोला—'प्रिय! तुम बड़ी भोली हो। तुम मेरे दुःख से अनभिज्ञ हो। सुनो, अब वह समय आ गया है, जब मैं तुम्हारे सामने वह रहस्य खोलकर रख दूं।

यह कहकर वह भद्रमित्र के पद्ममणि ले आया और बोला 'ये रत्न भद्रमित्र के हैं। वह धरोहर के रूप में मेरे पास रख गया था। उसके जहाज डूबने के समाचार सुन मैंने उसकी मृत्यु जान, सोचा चलो, अब तो मैं उसके अमूल्य रत्नों का स्वामी बन गया। क्योंकि सेठ और मेरे सिवाय आज तक कोई इस विषय में कुछ भी नहीं जानता था। आज मैंने तुम्हें यह रहस्य बताया है।

किन्तु जबसे मैंने सुना है कि सेठ बच गया है और घर लौट रहा है, तबसे मेरा चित्त अत्यधिक व्याकुल रहने लगा है। क्योंकि वह आते ही अपने रत्न मांगेगा और यदि मैं उसे रत्न लौटा देता हूँ। तो फिर यह अपार धन हाथ से चला जायेगा। इसी चिन्ता में घुला जाता हूँ।

यह सुन पत्नी आश्चर्यमयी मुद्रा बनाकर बोली–'स्वामिन ! मित्र का कर्तव्य है कि वह विपत्ति में अपने मित्र की सहायता करे, और आप तो संसार में सत्यघोष के नाम से प्रसिद्ध हो। अतः मित्र के प्रति झूठ बोलकर इस प्रकार विश्वासघात करना उचित नहीं। धन क्षण भंगुर व नाशवान है और फिर अपने यहां धन की क्या कमी है ? जो है वही बहुत है''।

पत्नी की इस नीति संगत बात का उस पर कुछ भी असर न हुआ। जैसे तप्त तवे पर पानी की बूंद गिरते ही सूख जाती है वैसे ही उसकी वह धर्ममयी बात उसके कानों में गिर कर नष्ट हो गई।

आग बबूला होकर बोला 'तुम ना समझ, मुझे सीख देने चली हो। खबरदार ! यह बात तुमने किसी और को कही तो। तुम क्या जानो, ये कितने कीमती रत्न है।' मैं अपने हाथ लगे इस धन को यों ही कैसे जाने दे सकता हूँ।

बिचारी पत्नी उसके क्रोधावेश से सहम गई। कुछ भी न बोल सकी। क्रोधावेश में प्रलाप करता हुआ सत्यघोष घर से निकल पड़ा।

राह में ही, विदेश से लौटते हुए भद्रमित्र से उसकी भेंट हो गई। उसे देखते ही सत्यघोष बड़ा प्रेम दर्शाते हुए उससे गले मिला और आंसू बहाते हुए बोला 'मित्र ! तुम्हें देख मेरा मन हर्ष विभोर हो उठा है। तुम्हारे जहाजों के डूबने के समाचार सुन मैं तो बड़ा व्याकुल हो उठा था। यही प्रार्थना

किया करता था कि भगवन् ! मेरे मित्र को बचा लेना।

आज सहसा तुम्हें पाकर मेरे आनन्द की कोई सीमा ही नहीं रही। चलो, घर चलो, जान बची लाखों पाए। धन तो भाग्य में लिखा होगा तो फिर हो जायेगा। प्राणों के बचने का उत्सव मनाओ।

भद्रमित्र बोला—'मित्र सारा धन समुद्र में ही डूब गया। अब तो जो रत्न धरोहर के रूप में मैं तुम्हारे पास रख गया था वे ही जीवन यापन करने के लिए सहारे स्वरूप होंगे।

यह सुनते ही पुरोहित ने तेवर बदल लिये। बोलो 'भद्रमित्र ! तुम्हारा दिमाग खराब हो गया दिखता है। जहाजों के डूब जाने से तुम विक्षिप्त हो गये हो। क्यों मुझ पर झूठा लांछन लगाते हो। तुमने मुझे कौनसे रत्न दिये थे ? बोलो !
पुरोहित का घोर गर्जन सुन भीड़ एकत्रित हो गई। सत्यघोष की बात से सब सहमत होते जाते थे। सभी ने सोचा-सेठ जहाज डूब जाने से बावला हो गया है, इसलिए यों ही बकता है। भला सत्यघोष कभी झूठ बोल सकता है।

अब तो सेठ का सिर चकराया। फिर भी उसने हिम्मत बांधकर कहा 'सत्यघोष ! मैंने तुम्हें अपना परम हितु और सच्चा मित्र जान तुम्हारे पास पांच पद्ममणियां रखी थी। इस नाशवान चंचला लक्ष्मी के लिए मित्र के साथ विश्वासघात मत करो। सच्चाई पर रहो और मेरे रत्न लौटा दो। मेरे दुर्भाग्य काल में तुम इस तरह धोखा

न दो।

परन्तु सेठ की वहां कौन सुनने वाला था ? सेठ पागल हो गया है ऐसा कहते हुए सभी चले गये। सत्यघोष भी राज दरबार की ओर चला गया। दरबार में पहुंचते ही दरबारियों ने उठकर नमस्कार कर उसका स्वागत किया। वह भी सबों को आशीष देता हुआ अपने आसन पर जा बैठा। उस समय दरबार में उसकी सत्यवादिता की ही चर्चा चल रही थी। सभी मुक्त कन्ठ से उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

सत्यघोष के पीछे ही पीछे थोड़ी ही देर मे सेठ भद्रमित्र भी दरबार में जा पहुंचा। उसने राजा को नमस्कार कर अपनी दुःख कथा कह सुनाई। और सत्यघोष से अपने रत्न दिलाने के लिए न्याय की प्रार्थना की। सत्यघोष से जब राजा ने पूछा तो वह साफ मुकर गया।

राजा ने सेठ से गवाह प्रस्तुत करने को कहा, तो सेठ बोला "मैंने इसे विश्वासपात्र मित्र जान इसके पास रत्न रख दिये थे। न तो मेरे पास गवाह ही हैं और न कोई लिखावट ही।

यह सुन राजा ने मन्त्रियों की ओर दृष्टि उठाई। सभी का अभिमत यही था कि गवाह और लिखावट के अभाव में सेठ के कह देने मात्र से सत्यघोष को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह तो बड़ा ही सत्यवादी हैं। सेठ पागल हो जाने के कारण ही उस पर ऐसा झूठा दोषारोपण कर रहा है। तब

राजा ने भी मन्त्रियों की राय से अपनी सहमति प्रकट कर दी।

सेठ अब और कर ही क्या सकता था। वह सब ओर से निराश हो चला। वह रात दिन गली गली में घूमता हुआ यही कहता जाता था 'सत्यघोष ने मेरे पांच रत्न हड़प लिये है राजा भी न्याय नहीं करता, अब मैं क्या करू' ?

रात्रि का द्वितीय पहर था, राजमहल में पटरानी शयन कर रही थी कि सेठ का करुण क्रन्दन उसके कानों तक पहुँचा। उसने राजा से कहा "स्वामिन् यह बड़ा दुखिया मालूम पड़ता है। आप क्यों नही उसे न्याय दिलाते ?

राजा बोला-'प्रिय समुद्र में जहाजों के डूब जाने से यह सेठ भद्रमित्र पागल हो गया है और पागलपन में यह महान् सत्यवादी पुरोहित सत्यघोष पर झूठा अभियोग लगा रहा है। उसके पास न तो कोई लिखावट ही है और न कोई गवाह। तब तू ही बता उसकी बात कैसे मान ली जाये ?

रानी बोली-"यदि सेठ पागल होता, तो कभी कुछ बकता और कभी कुछ। किन्तु यह तो अविरत रूप से एक ही बात कहता है। इसे पागल तो नहीं कहा जा सकता। अतः उसकी फरियाद पर सहानुभूति पूर्वक विचार किया जाना चाहिये। यदि आप आज्ञा दें और मेरे कार्य में सहयोग दें तो मैं असली बात का पता लगा सकती हूँ। राजा ने इस पर अपनी ओर से सहमति प्रकट कर दी।

प्रातःकाल होते ही रानी ने सेठ को दासी के द्वारा

महल में बुलवाया। पूछने पर सेठ ने अपनी दुःख कथा कह सुनाई। रानी ने उसे धीरज बंधाया। तदुपरांत रानी ने अन्तःपुर की एक दासी को सत्यघोष को बुलाने के लिए उसके घर भेज दिया।

महारानी का निमन्त्रण पाकर सत्यघोष अत्यन्त प्रसन्न हुआ और तत्काल ही महल की ओर चल पड़ा। महल में आकर वह रानी से मिला। कुशलक्षेम पूछने के बाद रानी बोली 'पुरोहित जी! आओ चौपड़ खेलें। पुरोहित जी ने चौपड़ खेलना स्वीकार कर लिया।

रानी खेल में अत्यन्त निपुण थी। पुरोहित हार गया उसके पास उस समय नक़द राशि न थी। अतः रानी ने उसकी कटार व जनेऊ उतरवाली। खेल चलता रहा। इधर रानी ने संकेत से समझाकर दासी को पुरोहित के घर भेज दिया।

संकेत पा दासी विद्युत वेग से पुरोहित के घर जा पहुँची और पुरोहित की पत्नी को पुरोहित की कटार और जनेऊ दिखाकर बोली कि पुरोहित जी ने राजमहल में महारानी के सम्मुख यह स्वीकार कर लिया है कि मेरे पास सेठ के रत्न धरोहर के रूप में पड़े हैं। अतः रत्न न लौटने पर रानी राजा को कहकर प्राणदण्ड दिलवादेगी। पुरोहित जी ने अपनी कटार और जनेऊ देकर यह कहा कि यह मैं तुम्हें दिखाकर वे रत्न ले आऊं सो तुम मुझे वे रत्न दे दो, ताकि पुरोहित जी की प्राण रक्षा हो सके।

बेचारी पुरोहित की पत्नी ने कटार और जनेऊ देख, दासी की बात पर विश्वास कर, वे रत्न दासी को दे दिये। दासी

रत्नों को लेकर महल में आ गई और रानी को संकेत कर दिया।

दासी का संकेत समझकर खेल में पुरोहित को वहीं छोड़, रानी ने आकर जब रत्नों को देखा, तो उनकी दमक देखकर ही वह विस्मय-विमुग्ध हो गई। उन्हें अपने रत्नों में मिलाकर; उसने सेठ को बुलाकर अपने रत्नों को छांटने के लिए कहा। सेठ ने अपने रत्न पहचान कर उठा लिये। तब तो रानी को सेठ की बात पर अविश्वास करने का कोई कारण ही नजर न आया और दासी को महाराज को बुलाने भेज दिया।

अब वह पुरोहित के पास लौटी। रत्नों की बात चलाने पर पुरोहित ने साफ मना कर दिया। तब वे रत्न रानी ने पुरोहित के सम्मुख रखे, जिन्हें देखते ही उसके चेहरे की हवाइयां उड़ने लगी और वस्तु स्थिति को समझ अपना अपराध स्वीकार कर लिया और प्राणरक्षा के लिए गिडगिड़ाने लगा।

तभी राजा वहां आ गया। यह सब दृश्य देख उसने रानी के चातुर्य की भूरि भूरि प्रशंसा की और पुरोहित का सब धन राज्य कोष में जमा करवा कर, उसे गधे पर बैठाकर कृष्णमुख कर देश निकाला दिया। पुरोहित को अपने असत्य और लालच का फल मिल गया। सच ही कहा है लालच बुरी बला है।

सेठ भी अपने रत्न पाकर रानी की प्रशंसा करता हुआ धन्यवाद देता हुआ सहर्ष अपने घर लौटा। इस प्रकार अन्ततः सत्य की ही विजय हुई।

卐 एक आचार्य का अपराध 卐

बात सदियों पुरानी है। तब दक्षिण भारत में पल्लव नरेश महेन्द्र विक्रम की विजय-दुंदुभी दशों दिशाओं में गूंज रही थी। उनके धर्ममयी, न्याययुक्त शासन से प्रजा में अमर चैन की बंशी बज रही थी। जन जीवन धन-धान्य से समृद्ध था और सर्वत्र जिन धर्म की प्रभावना व्याप्त थी। सर्वत्र निर्ग्रन्थ जैन साधु साध्वियां धर्म की पताका फहराते हुए अपनी पावन चरण-रज से धरा धाम को तपोपूत कर रहे थे।

उस राज्य में दक्षिण अर्काट जिले का एक मनोरम ग्राम तिरुन रुन कुंदम धर्मस्थली बना हुआ था। सुन्दर विशाल उत्तुंग शिखरों से युक्त, स्वर्णमयी कलशों से शोभायमान, सूर्य के रथ के घोड़ों के खुरों को अपनी गगन चुम्बिनी पताकाओं में अटका देने वाले भव्य जिन मंदिरों का कलामयी सौन्दर्य जन जन को अपनी ओर आकर्षित करता था। वे परम पावन प्रशांत जिन मंदिर व उनमें विराजमान भव्य जिन बिंब सभी जीवों को सुख शांति प्रदान करते थे।

तिरुनरुन कुंदम नगर के उत्तर में एक नातिदीर्घ पर्वत श्रेणी फैली हुई थी। नाना प्रकार की प्राकृतिक सम्पदाओं से विभूषित उस पर्वत श्रेणी में कई मनोरम गुफायें तपस्वियों की तपस्थली बन गई थीं। जैन कला कृतियां पत्थरों पर उभर-

उभर कर उन्हें सजीवता सी प्रदान कर रही थी। वायुमन्डल जैन-सिद्धान्तों की सुरभि से सुवासित था।

ऐसे समय में आचार्य श्री धर्मसेन अपने विशाल चतुर्विध संघ-सहित दक्षिण पाटलिपुत्र तिरुप्पदी पूलियूर से विहार करते हुए तिरुनरुन कुंदम की ओर अग्रसर हो रहे थे। सभी तपस्वियों के मुखमन्डल पर वैराग्य की गम्भीरता व शांति विराज रही थी। सबसे आगे आचार्य श्री अपने तेजस्वी व्यक्तित्व को लिये हुए सुशोभित हो रहे थे।

वनमार्ग में मुनिसंघ के सामने की ओर से एक लावण्य मयी मृदु मुस्कान से युक्त, अठखेलियां करती हुई, अपने में ही खोई हुई, सिर पर रखे घड़े को एक हाथ से थामे एक नवयुवती पनिहारिन अपने सुगठित वदन को लचकाती व कठोर कुचों को कन्दुक सी उचकाती, गीत की मधुर ध्वनि से वायुमन्डल में संगीत की स्वर लहरियां लहराती चली आती थी।

उसके समीप आने पर आचार्य ने मद स्मित के साथ उससे तिरुनरुन कुंदम नगर का मार्ग पूछा। युवती ने भी मंद स्मित के साथ, हाथ के इशारे से नगर की राह बतलादी और फिर अपने नाज नखरों के साथ इठलाती हुई चल दी जाती हुई पनिहारिन के झीने वस्त्रों मे उसका सौन्दर्य झांकता हुआ सा हर व्यक्ति की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करता था। आचार्य भी चदक्षणों के लिए उधर ही टकटकी लगाये देखते हुए मुस्कराते रहे।

फिर क्या था? संघ में खलबली मच गई। हर एक तपस्वी के मुख पर प्रश्नवाचक चिह्न दिखाई देने लगा।

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी

आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषण जी महाराज प्रवचन हेतु एस डी ओ कोर्ट जाते हुए

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी
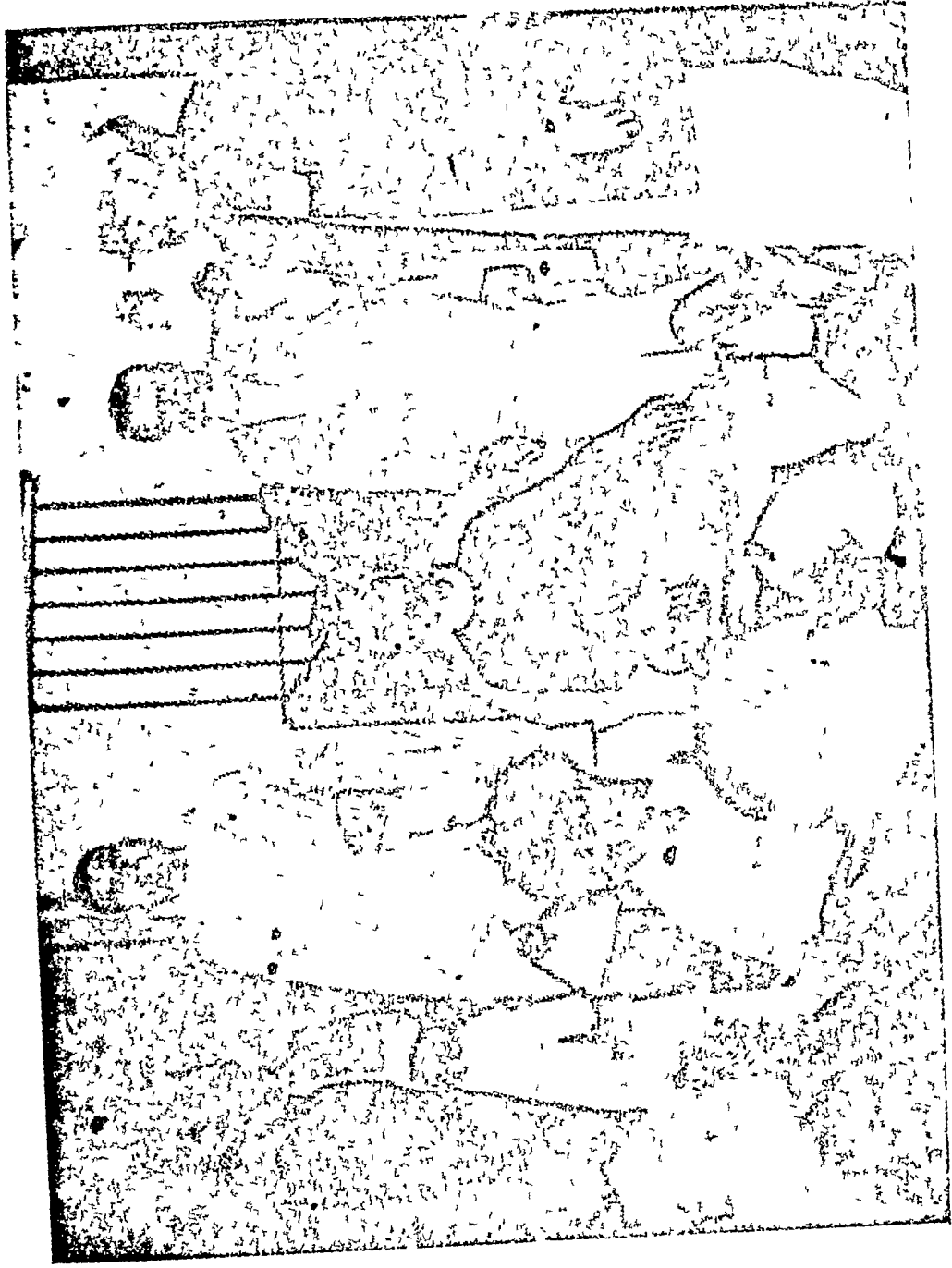
एस, डी. ओ कोर्ट मे कैदियों के समक्ष प्रवचन करते हुए आचार्य रत्न

कानाफूसी होने लगी। आचार्य श्री का यह आचरण उनके सुदीर्घ तपस्वी जीवन में अभूतपूर्व था। सभी विस्मित और शंकित थे। आचार्य का यह आचरण अन्य मुनियों के लिए किसी भी प्रकार से प्रेरणास्पद न था।

जो आचार्य अन्य तपस्वियों के अतिचारों पर प्रायश्चित आदि दण्ड व्यवस्था करता है; उसके स्वयं के अतिचार पर उसे क्यों नहीं प्रायश्चित लेना चाहिए ? यह प्रश्न सभी के मन में हिलोरें ले रहा था। पर बिल्ली के गले में घंटी बांधे कौन ? अगुवा कौन हो ? यह प्रश्न सबके मन को झकझोर रहा था। कहीं छोटे मुंह बड़ी बात न हो जाये. इसी डर से बोलने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था। किन्तु द्वंद सभी के अन्तर को मथे डाल रहा था। एक अज्ञात कुलशील नारी के साथ हंस हंस कर बातें करना और उसके चले जाने पर उसी को ताकते रहना एक आचार्य के लिए महान पाप था ! सभी इस काण्ड से व्यथित थे।

गन्तव्य स्थल पर पहुंचकर सभी अपने अपने स्थान पर जा बिराजे। बाहर पूर्णतया शान्ति थी, पर लोगों के हृदय अशांत थे।

सभा में लोगों के यथा स्थान बैठ जाने पर ज्योंही आचार्य श्री ने आशीर्वचन कहने के लिए मंगलाचरण किया त्योंही संघस्थ वरिष्ठ मुनिवर श्री वीरसेन उठ खड़े हुए। आचार्य बोले मुनीश्वर क्या बात है ? मुनिवर वीरसेन ने नम्रतापूर्वक कहा "महाराज आज्ञा दें तो आपका आशीर्वाद पाने से पूर्व मुनिसंघ आपसे कुछ निवेदन करना चाहता है ;

आचार्यत्व की गरिमा से युक्त वाणी में आचार्य ने आज्ञा दी। एक क्षण के लिए सभा में सन्नाटा छा गया। फिर साहस बटोर कर वीरसेन मुनि ने संघ की शंका उपस्थित कर प्रायश्चित लेने के लिए निवेदन किया। सभी ने मौन रूप से मुनिवर की बात का अनुमोदन किया।

आचार्य ने चारों ओर देखा। सभी वीरसेन से सहमत प्रतीत होते थे। मुनिसंघ का आचार्य के प्रति विद्रोह का यह पहला अवसर था। आचार्य श्री संघ के इस दुस्साहस पूर्ण कृत्य पर क्रुद्ध हो उठे। बोले–'क्या किसी युवती से मार्ग पूछना पाप है? और संघस्थ मुनिसंघ आचार्य के गुण दोषों पर टीका टिप्पणी करें–यह कहां तक समीचीन है? मै आचार्य हू, मैं स्वयं जानता हू कि कौनसा कार्य उचित है और कौनसा अनुचित। आप लोगों को मेरे आच[illegible]र विचार करने का कोई अधिकार नहीं है।

मान कषाय के वशीभूत, आचार्य जान बूझकर मक्खी निगलने का प्रयास कर रहे थे। अपने मन की दुर्बलता का उन्हें बोध हो गया था, पर यह सोचकर कि मन की दुर्बलता को स्वीकार करने से उनके मान-सम्मान व यश-गौरव को कलंक लग जायेगा। वे अपनी बात पर दृढ होकर अड़े रहे।

सही है! एक बार कीचड़ मे फिसलने के बाद व्यक्ति उसमें फिसलता ही जाता है। उसका कीचड़ से बाहर निकल आना बड़ा कठिन हो जाता है।

मुनिसंघ में खलबली मच गई। विद्रोह भड़क उठा। फिर भी बड़े संयत व विनीत स्वरों में मुनियों ने आचार्य को समझाने की चेष्टा करते हुए कहा "आचार्यवर्य! भगवान महावीर के शासन में मान का कोई स्थान नहीं है। आप ऋजुता धारण कर धर्माचरण का मार्ग प्रशस्त करें।" किन्तु आचार्य प्रायश्चित लेने को तैयार न हुए।

पुनः वीरसेन मुनि ने विनम्रता पूर्वक निवेदन किया—"आचार्य वर्य! संघ को आप जैसे महान तपस्वी के नेतृत्व पर गर्व है। समस्त भारतीय जैन समाज में आपके प्रति दृढ़ श्रद्धा है। आपने जो भगवान् महावीर की परम्परा को अक्षुण्ण रूप से आगे बढ़ाया है, इस पर सभी को अभिमान है। इस सुगठित संघ को आप पश्चाताप व प्रायश्चित द्वारा छिन्न भिन्न होने से बचावें।

प्रायश्चित की बात सुनते ही आचार्य बौखला उठे। झल्लाकर बोले-"तुम्हें मेरे विरोध का कुफल भोगना होगा। मैं तुम्हारी कृतघ्नता को कभी क्षमा नहीं कर सकता। जिस धर्म के प्रसार में मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था, अब मुझे उसी के विध्वंस के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करना होगा"। यह कहकर आचार्य धर्मसेन संघ को छोड़कर चल पड़े।

राह में चलते चलते क्रोधावेश में कहते जाते थे-'इन कृतघ्नों का नाश करके ही दम लूंगा। ऐसा विचार करते हुए त्रिचनापल्लो पहुँचे। सुप्रसिद्ध रंगम नामक मन्दिर में जाकर शैवमत में दीक्षित हो गये और मन्दिर को भी शैव बना दिया।

उनके चिरभक्त राजा महेन्द्रवर्मन ने भी शैवमत स्वीकार कर लिया और अपने गुरु की आज्ञा से कई जैन मंदिरों को शैव मन्दिर बनाता हुआ तिरुनरुन कुंदम नगर में आया। यहां के जिन मन्दिर को विध्वश करने के लिए ज्योंही वह मन्दिर में प्रविष्ट हुआ, त्योंही एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई। हजारों सूर्यों से भी अधिक तेजोमयी ज्योति को देखकर राजा व उसके सैनिक घबरा उठे। सेना भयाक्रांत हो भागने लगी राजा भी जो कि मन्दिर को विध्वंश करने के लिए आया था पश्चात्ताप की ज्वाला में जलने लगा।

उसे पुनः सद्धर्म में श्रद्धान हुआ। धर्मसेन को अपनी भूल मालूम हुई। वे लौटकर रंगम मन्दिर आये पर मंहत के आगे उनकी एक न चली। पासापलट गया था। यत्र-तत्र सर्वत्र शैवमत का प्रचार प्रसार हो चला था, जिसे चाहते हुए भी राजा और धर्मसेन नहीं रोक पाये।

आचार्य के किंचित् अभिमान् ने सारा खेल बिगाड़ दिया जैनत्व का ह्रास होता चला गया और पाखण्ड पनपता चला गया। कोटि-कोटि जन मिथ्यात्व की ओर अभिमुख हो गये। जरा सी भूल से सारे आर्यावर्त की कायापलट गई। शिथिलाचार बढ़ा, सद्धर्म का ह्रास हुआ। किसी ने सच ही कहा है--

माया तजी, तो क्या भया, मान तजा नही जाये।
मान बडे मुनिवर गले, मान सबनकू खाय॥

अस्तु, साधर्मी जनों! मान के वशीभूत हो, अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग अलापना छोड़, सरलचित्त होकर भगवान जिनेन्द्र के द्वारा प्रदर्शित सन्मार्ग पर आरुढ़ होओ। एकांत पक्ष को त्याग, स्याद्वादमयी अनेकांत वाणी का अवलम्बन लेकर आत्म कल्याण में लगो।

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी

पण्डाल मे वेदी की भव्य झाकी ।

।। सम्यक्त का प्रभाव ।।

पुरानी बात है, एक नगरी में एक श्रेष्ठि-श्रावक रहता था। अपने कार्य में निपुण, धर्मपालन में उत्तम था। उसके आठ सेठानियां थीं। जिनके नामों के अलावा गुण भी पूर्ण थे। सात सेठानियां तो घर धन्धों से निवृत्त हो धर्म चर्चा में दिन बिताती थी। आठवीं धर्म कार्य में संकोच करती थी। सेठ पर्व के दिनों में जंगल में जाकर रात व्यतीत करता, दिन में उपवास करता, काम धन्धा वन्द रखता अपनी आठों स्त्रियों को भी साथ ले जाकर धर्म चर्चा सुनाता-सुनता यही उसका कार्य था। एक समय राजा ने सुना मेरा गुणवान राज श्रेष्टि धर्म लग्न से धर्म चर्चा करता हैं। राजा ने मनादी करवादी आज सब जनता उपवास करे ब्रह्मचर्य से रहे दिन में कार्य धन्धा करे रात्रि को जागरण करे या एकान्त में जाकर रात व्यतीत करे। हम भी एक स्थान में जायेंगे दिन भर के कार्य में व्यस्त रहकर राजा भूल गया जब सूर्य अस्त हुआ मन्त्रीगण आने लगे, राजा से प्रार्थना की हे महाराज आपने मुनादी करवाई थी। आज के दिन कोई कार्य व्यस्त ना रहे, धर्म साधन करे दिन तो व्यतीत हो गया अब रात्रि आ रही हैं।

आप भूल गये। राजा यह वार्ता सुनकर चौकन्ना हो गया सर्व साथियों को लेकर चलता हैं। बाजार बन्द थे। जब श्रेष्ठि के मकान के पास राजा की सवारी पहुंचती है। राजा को ध्यान आता है कि हो न हो यही सेठ का मकान हैं। आज बन्द क्यों पड़ा हैं। मन्त्री से पूछा क्या कारण है। बतलाओ ? उत्तर मिलता है राजन् श्रेष्ठि का यह नियम है चौदस और अष्टमी के दिन रात्रि को एकान्त स्थान में अपनी आठों सेठानियों को साथ में लेकर धर्मचर्चा में व्यतीत करता है। यह वार्ता सुनकर राजा भी अधीर हो गया, चलों जहां सेठ रहता हो चलें देखें क्या कर रहा हैं ? जब महल, मकान, बाजार बन्द देखे, आधी रात्रि व्यतीत थी एक चोर चोरी को निकलता हैं। जो उसका कार्य था। उसे भी पता चला आज नगरी के लोग जगह २ धर्म साधन कर रहे है। राजा भी उधर गया हैं। चोर राजा के पीछे हो लिया जाकर छिप गया। चोरी करना भूल गया। राजा जब उधर वहां श्रेष्ठि स्त्रियों से धर्म की वार्तालाप कर रहा था। राजा एक जगह खड़ा होकर मन्त्री चोर अलग सुन रहे थे। सात सेठानी अलग अलग कथाएं सुनाती हैं। आठवीं छोटी सेठानी बीच में टोक देती है मैं नहीं मानती। पहली सेठानी इस चौथे काल के अन्त में महावीर स्वामी के समवशरण में आकर मिथ्यात्वी अभिमानी इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण अपने ५०० शिष्यों सहित इन्द्र के कहने पर मानस्तम्भ के नजदीक आता है वहां आकर उसका मान खण्ड हो गया यह जैन

धर्म का कट्टर विरोधी था। जब इन्द्र ने देखा भगवान की वाणी ६६ दिन से रुक रही हैं। ब्राह्मण शिष्य का रूप धारण करके इन्द्रभूति गौतम के पास जाता है, बोला मेरे गुरु ने बतलाया था भूल गया महाराज इसका अर्थ कहो। यह श्लोक था:-

त्रैकाल्य द्रव्य षटकं नवपद सहितं जीव षट्काय लेश्या पंचान्ये चास्ति काया वृत समिति गति ज्ञान चारित्र भेदा इत्येतन मोक्ष मूलम्।

यहां तक सुनकर गौतम मान से भर कर गुस्से में बोला चल इसका अर्थ तेरे गुरु के पास ही जाकर बतलाऊंगा। इन्द्र ने देखा कार्य बन गया। साथ ले गया भगवान से दिगम्बरी दीक्षा ले मुनि बन, मुख्य गणधर बना, मोक्ष गया। यह सम्यक्त का माहात्म्य मैंने जाना।

छोटी सेठानी- मैं नहीं मानती?

दूसरी सेठानी—इसके बाद दूसरा गणधर सुधर्म जी हुए, उनका उपदेश सुनने राजकुमार जम्बू भी जाता था। एक दिन जम्बू सुधर्म मुनिराज से अपनी आयु कमती जानकर घर वापिस आ रहा था जब वह शहर के अन्दर घुस गया पीछे से नगर का दरवाजा गिर जाता है। उसे दृढ श्रद्धान हो गया घर वापिस आकर मुनि बनने की जो भावना लेकर आया था माता पिता से जाहिर कर देता हैं। उसकी सगाई आठ सेठ

पुत्रियों से हो चुकी थी। उसके इन्कार करने पर माता ने यह मनवा लिया था। शादी करके प्रातः मुनि बन जाऊंगा। आठों कन्याओं से पूछा गया सर्व ने सलाह करली हमारी बात अगर न मानी तो हम भी व्रत ले लेंगी। रात्रि में इसी तरह वार्तालाप चली कन्यायें हारी।

जो द्रव्य दान में आया था। एक चोर चोरी करने आया था सुन रहा था। सुबह होते ही जम्बूकुमार मुनि बन गया चोर धन छोड़ चुका था। यह था "सम्यक्त" के प्रभाव का महात्मय।

तब भी छोटी सेठानी न मानी ?

महावीर भगवान के मोक्ष जाने के बाद एक ब्राह्मण का लड़का सड़क पर अपने साथियों के साथ गोली खेल रहा था। उसने अपनी चतुराई से ऊपर ऊपर चौदह गोली चढ़ा दी उधर से एक मुनिराज विचर रहे थे उनका ध्यान पड़ा किसके पुत्र हो पूछा ? होनहार जानकर उनके पिता के पास जाकर साथ ले गये पढ़ाकर विद्वान बनाया मुनि दीक्षा देकर संघ का नायक बनाया वह ११ अंग चौदह पूर्व का ज्ञाता बना श्रुत केवली कहलाये २४००० मुनियों का संघ बना यह था 'सम्यक्त' का महात्म्य।

छोटी सेठानी फिर भी बोली- मैं नहीं मानती ?

भगवान महावीर के मोक्ष चले जाने पर ज्यों ज्यों ज्ञान की व्युच्छित्त हुई शास्त्र लिखित में आते गये उसमें एक कथा आती है। एक श्रावक कुछ ज्ञान प्राप्ति हेतु याद करके दीवार पर लिखता जाता था। उसने यहां से दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्ग"-वह तो लिखकर एक दिन अपने कार्य से गाँव चला जाता है। पीछे से एक नग्न दिगम्बर मुनिराज आहार के निमित्त आ जाते हैं। उसकी स्त्री पड़गाह लेती है। जब महाराज आहार से निवृत्त हो जाते हैं। दीवार पर कुछ लिखा हुआ देखते है। जो ऊपर बतला आये उसमें सम्यक्त शब्द बढ़ा देते हैं। वह तो चले जाते हैं शाम को लौटकर वह श्रावक आता है। पूछता है कौन इधर आये थे। जिन्होंने ये शब्द लिखे, स्त्री बतला देती है एक मुनिराज आहार निमित्त मैंने पड़गाह लिये थे उन्होंने देखा सम्यक्त शब्द अंकित कर गये अब वह सम्यक्त शब्द लिखने लगा। यह सम्यक्त्व की परिभाषा है। इस सेठानी ने बतलाया मुझे यह "तत्वार्थसूत्र" पढकर श्रद्धान हुआ!

तब भी छोटी सेठानी बोली मैं नहीं मानती?

इसके बाद जिनचन्द मुनिराज के शिष्यों में एक महान ज्ञाता मुनिराज हुए। वह पूर्वभव में जो ग्वाले का जीव था। उसे एक गढा हुआ शास्त्र मिला जिससे ज्ञान हुआ था। वह मर कर एक सेठ के लड़का पैदा हुआ जब पालने में झूल रहा था उधर आहार हेतु वही जिनचन्द मुनिराज आते हैं। बच्चा देखकर

हंसता है। उसे पूर्वभव स्मरण हुआ मुनिराज देखकर होनहार जानकर आशीर्वाद देकर चले जाते हैं। जो आगे चलकर उन्हीं महाराज के पास जाकर दीक्षा लेकर महान कुन्द कुन्दाचार्य विख्यात हुआ। जिनके समय में एक विवाद चल रहा था, श्वेताम्बरों ने कहा था हम पहले हैं। दिगम्बर कहते हम पहले हैं। कुन्द कुन्दा मुनिराज को एक दफा शंका हुई वे विदेह क्षेत्र गये वहा जाकर सीमन्धर भगवान से निर्णय कर आयें, तभी से उन्हें श्रद्धान बढ़ा, जब श्वेताम्बर दिगम्बर का निर्णय हुआ था। एक संघ गिरनार पर उन श्वेताम्बरों का गया हुआ था। उधर पहले दिगम्बर भी पहुँचे हुए थे। श्वेताम्बर कहते हम पहले हैं। इसलिए पहाड़ की वन्दना पहले हम करेंगे। दिगम्बर कहते थे पहले हमारा हक है। निर्णय यह हुआ जो यहां की रहने वाली अम्बिका देवी जो यह कह दे मान्य है।

उसने आदि दिगम्बर कहा जय जयकार हुई तभी से कुन्द कुन्द आचार्य भगवान कहलाये तमाम आचार्यों में शिरोमणि हैं। उनके लिखे ८४ पाहुड़ हैं। उन्ही के शास्त्रों से सम्यक्त्व का निर्णय होता है। वे छोटी शताब्दी में हुए। मुझे यह पढकर सम्यक्त्व हुआ।

छोटी सेठानी तब भी यह बोली मैं नहीं मानती ?

यह सुनकर राजा कहने लगा इसे सवेरे जाकर दण्ड दूंगा। चोर भी कहने लगा ये कैसे मूर्ख है।

छटी स्त्री कहने लगी मैंने पढा है शंकराचार्य का समय था लिंगायतों का समय थो। जैन धर्म का ह्रास होता जा रहा था बनारस का राजा शिव कोटि ब्राह्मणों के अधीन था। चन्द्र पुरी में एक शिव पिंडी थी। उसके निमित्त से ब्राह्मणों ने प्रख्यात कर हुआ था। शिवजी एक मन मिष्ठान का भोजन करते हैं। कुछ तो उनको चढा देते थे बाकी आप खा जाते थे। इधर आचार्य समन्त भद्र दिगम्बर मुनि को भस्मक व्याधि रोग हो गया था। उनके गुरु ने उन्हें दीक्षा छोड़ कर जैन का सन्यासी बने रहने को कह दिया था। बतला दिया था जब यह रोग हट जावे फिर मुनि बनकर धर्म का प्रचार करना अभी समाधि लेने का समय नहीं है। समन्त भद्र स्वामी बनारस पहुँच जाते हैं। राजा शिव कोटि से मिलते है। राजा आज्ञा दे देते हैं तुम शिवजी को भोजन करवा सकते हो? जब समन्तभद्र स्वामी ने कहा मैं शिवजी को एक मन का मिष्ठान खिला दूंगा। पंडे खुद खा जाते हैं। नौकरों को राजा ने आज्ञा दे दी उस दिन से मिष्ठान का थाल भोग के लिये समन्तभद्र को दिया जाता था वह किवाड़ों को बन्द करके थोडा सा तो पिंडी के आगे चढ़ा देते बाकी आप चट कर जाते जिससे उनकी भूख मिट जाती। इसी प्रकार ज्यों ज्यों उनका रोग मिटता गया मिष्टान बचने लगा। उधर पंडे उनकी क्रिया से चिढते थे। उन्होंने एक जगह से मौका पोकर एक लडके को अन्दर घुसा देते हैं। उसने उस मिष्ठान को समन्त भद्र के द्वारा खा जाने को देख लिया। आकर राजा से

शिकायत करी उधर अब मिष्ठान भी बचने लगा। राजा ने नाराज होकर समन्तभद्र से कहा तुमने हमको धोखा दिया। मिष्ठान आप खुद खा जाते हो। इसलिये पिंडी को नमस्कार करो। उन्होंने यह शर्त नहीं मानी। कहा मैं शिव पिंडी को नमस्कार नहीं करूंगा जब राजा नहीं माना उन्होंने सोचा यह ठीक नहीं है। कहा राजन यह पिंडी मेरा नमस्कार नहीं झेल सकेगी। राजा अपनी जिद पर अड़ा रहा हताश समन्त भद्र स्वामी ने पिंडी को लोहे की जंजीरों से जकड़ दिया और चन्द्रप्रभु स्तोत्र पढने लगे। उसी समय शिव पिंडी फट जाती है। और एक मनोज्ञ चन्द्रप्रभु भगवान की प्रतिमा प्रकट होती हैं। तभी सभी को श्रद्धान हुआ।

छोटी सेठानी बोली मैं तो नहीं मानती ?

सातवीं रानी कहने लगी एक राजा के दो पुत्र थे। राजा रानी एक दिन अष्टाह्निका पर्व में मुनि महाराज के दर्शनार्थ बन में गये। उन दोनों के साथ उनके दो पुत्र थे। जिनका नाम अकलंक व निष्कलंक था। जब राजा रानी ने आठ २ दिन का ब्रह्मचर्यव्रत लिया। दोनों पुत्रों को भी जो अभी आठ-दस साल के थे उन्होंने भी ये व्रत धारण कर लिये। जब वे यौवनवान हुए पिता ने शादी की सोची परन्तु दोनों ने कहा हे पिताजी हम दोनों आपके सामने मुनिराज से ब्रह्मचर्यव्रत ले चुके है। पिता ने कहा वह व्रत तो केवल आठ दिन का था। क्या आठ ही दिन

अकलंक-निकलंक
को राज सिपाही मारते हुवे

के व्रत होते है। हम तो जिन्दगी भर तक शादी नहीं करवाने का प्रण कर चुके है और धर्म प्रचार करेंगे। उस समय बोद्धों का वहुत ज़ोर था। दोनों भाइयों की मर्जी बौद्धधर्म पढकर जैन धर्म का प्रचार करने की हुई। पहले दूसरे का धर्म जानकर ही अपना प्रचार बनता हैं। उनको बोद्धों की चटशाला बोलते थे। पढने बिठला दिया गया। वे इतने निपुण थे। उनके धर्म के श्लोक भी साथ साथ रटते जाते थे। एक दिन कहीं जैन धर्म के खण्डन का विषय बौद्ध गुरु के सामने आगया उन दोनों को मौका मिल गया जब तमाम लड़के और गुरुजी चटशाला से गैर हाजिर थे। उन्होंने उस श्लोक को बदल दिया। जब गुरुजी वापिस आये देखा किसने कैसा किया सबसे पूछा यही उत्तर मिला हम नहीं जानते ? फिर भी गुरु को यकीन नहीं आया। एक दिन एक जैन धर्म की मूर्ति मंगवाई गई और कहा गया इस पर पैर रखकर उलाघों सर्व विद्यार्थी पैर मूर्ति के सिर पर रखकर मूर्ती के ऊपर से चले गये। जब अकलक निकलने की सोचता है। वे अगर पैर रखते हैं तो अविनय होती है। नहीं जाते हैं। पकड़े जाते हैं। धर्म का प्रचार कैसे होगा मारे जायेंगे। मरने का तो डर नही, उनको युक्ति सूझी मूर्ती के इस सिरे से उस सिरे तक तागा डाल दिया। और उसके निमित्त से उलब गये। यह परीक्षा रोज होने लगी। तब एक दिन बोद्ध गुरु ने राजा की आज्ञा से जिस कमरों में तमाम लड़के रात्रि को सोते थे वहां कांसे के वर्तन

बोरियों में भरवा कर रखवा दिये क्योंकि यह बात राजा जो बौद्ध धर्मानुयायी था। उसके पास भी पहुँच चुकी थी कि कुछ लड़के जैन धर्मानुयायी हैं। छुप कर पढ़ते हैं। नौकरों से कहलवा दिया। जब ये सर्व रात्रि में सो जावें जो कांसे के वर्तन कमरों में रखे हैं। ऊपर से गिरवा दिये जाये। जब उनकी आवाज होगी सर्व जग कर डर कर भागेगें। जो जैनी होगा अपने गुरु का नाम ले पकड़ लेना। ऐसा ही किया गया जब आधी रात्रि बीत चुकी जो काँसे के वर्तन रखे थे नौकरों ने ऊपर से पटके। जिनकी आवाज सुनकर सर्व जाग उठे। डर के सर्व अपने अपने मुंह से अपने देव का स्मरण करने लगे बौद्ध लड़के तो अपने गुरु का बौद्ध नाम लेकर गच्छामी शब्द कहें। अकलक निकलंक के मुंह से "णमो कार मन्त्र" निकलता है। जाना गया ये दोनों जैन हैं। भागने लगे पकड़ने के डर से दौड़ लिये। पीछे राजा के घोड़े थे पता चला भेजे गये। दिन निकल रहा था। चांदनी रात थी। एक धोबी का लड़का सड़क के पास सरोवर पर कपड़े धो रहा था। सरोवर में कमल के फूल खिल रहे थे। घोड़े पकड़ने को नजदीक आ पहुँचे। बचने का समय नही था। आपस में सलाह हुई एक दोनों में से इस सरोवर में छिप जायें अकलंक कह रहा था तुम निकलंक छिप जाओ। अब निकलक बोला तुम जिन्दा रहे तो धर्म का प्रचार होगा। बड़े हो जादा जानकर हो। इसी निष्कर्ष पर पहुंचा गया, अकलंक छिप गया।

उधर घोड़े दौड़ते देखकर वह धोबी का लड़का निकलंक को भागता देखकर आफत आई जानकर कहने लगा क्या कारण है। उत्तर मिला भाग लो। इतने में सवार नजदीक थे। दोनों को पकड़ लेते हैं। दोनों के सिर काट लिये गये। लाकर राजा को दे दिये। तभी अकलंक तालाब से बाहर आया और बे खटके होकर जैन धर्म का प्रचार करने लग गया। इतना ऊंचा विद्वान निकला। एक दिन एक सभा में विवाद चल रहा था अकलंक जी भी वहां पहुँच गये। उनकी तरफ से बौद्ध गुरु था। दूसरी तरफ से अकलंक बोलता था। जैन बौद्ध सभी जनता देख रही थी जो भी बौद्ध बोलता उसका खन्डन अकलंक कर देता परन्तु किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाते थे। जब छः महीने गुजर गये अकलंक को बड़ा सोच हुआ। एक रात्रि को भक्तामर जी पाठ बोलता हुआ सोया था। स्वप्न में आवाज आती है मैं चक्रेश्वरी बोल रही हूं जो जैन धर्म की देवी हैं। घबराओ नहीं तुम्हारी जीत होगी। सवेरे जब विवाद चले कहना कल का पाठ दुबारा पढो। परदे के पीछे एक घड़ा रखा है उसमें बौद्ध देवी स्थापित करी हुई हैं वह पहले दिन का पाठ जो सुनाया था बौद्ध गुरु उस देवी के प्रभाव से बोलता था। याद नहीं रहेगा। जब वह भूल जावे उत्तर नही दे परदा उठाकर घड़े में लात मारना। वह देवी भाग जायेगी। तुम्हारी विजय होगी। अगले दिन जब विवाद शुरू हुआ ऐसा ही कराया गया। जब बौद्धों की तरफ से गुरु ने बोलना

शुरू किया अकलंक बोला दुबारा बोलो। वह भूल गया। तभी पर्दे के पीछे जहां घड़ा रखा था अकलंक ने उसके लात मार दी उसके अन्दर बौद्ध देवी स्थापित थी। वह निकल कर भाग गई। जब बौद्ध गुरु आगे नही बोल सका। देवी के निमित्त से बोलता था। हार गया। अकलंक की जीत हुई। सम्यक्त का प्रचार हुआ तभी सातवी सेठानी बोली मेरे को इससे श्रदान हुआ है। छोटी फिर भी नहीं मानी! राजा मन्त्री चोर सुन रहे थे! कहते जाते थे सवेरे उठकर इसे दण्ड देना है। जब यह वार्ता पूर्ण हो चुकी। सवेरा हो चुका था। छोटी बोली मुझे भी अब श्रद्धान है। मैं भी जैन धर्म धारण करती हू। राजा अपने स्थान मन्त्री भी गया चोर भी चला गया। यह था धर्म का श्रद्धान, सम्यकत्व का प्रभाव। सेठ सेठानी भी घर जाकर अपने व्रत खोलती हुई पारणा किया तभी से धर्म का प्रचार बढा।

ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति

मुनि दीक्षा किस प्रकार सम्भव ?

संग्रहकर्ता :- क्षुल्लक आदिसागर जी महाराज

आधुनिक युग में यह चर्चा बराबर चल रही है कि आदिनाथ भगवान से लेकर पार्श्वनाथ पर्यन्त कोई ऐसा उल्लेख शास्त्रों में नहीं मिलता कि मुनि दीक्षा के अतिरिक्त अणुव्रत रूप दीक्षा किसी ने ग्रहण की है, अलबत्ता रक्षाबन्धन की कथा में अवश्य श्रवण नक्षत्र कांपता देखकर आकाश गामी विद्या के धारक क्षुल्लक को मुनिराज ने विष्णुकुमार मुनिराज के पास भेजा। यह एक कथा का अंश है। सिद्धान्त रूप का नहीं। भगवान के समोशरण में मुनियों का एक कोठा तो है, श्रावक श्राविकाओं का भी एक कोठा है, किन्तु क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं का पृथक कोई उल्लेख नहीं। श्रावक श्राविकाव्रती भी होते थे और अव्रती। सम्भवतः क्षुल्लक क्षुल्लिका व्रती श्रावकों के के आगे विराजमान होते थे।

आज के अनुसार दूसरी प्रतिमा से ११ वीं प्रतिमा तक का श्रावक निरतिचार व्रतों का पालन करें। महावीर स्वामी के पश्चात समय समय पर अनेक आचार्य हुए। आचार्य वसु नन्दि ने अपने श्रावकाचार में क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं का

उल्लेख किया है। दूसरे आचार्यों ने भी अनेक प्रकार से भेद किये हैं। महावीर स्वामी से पूर्व यशोधर चरित में इतना वर्णन आता हैं कि छोटे वहिन भाई जिनकी वलि दी जानी थी उनके सम्बन्ध में "क्षुल्लक" शब्द का उल्लेख हुआ है। कहीं कहीं नारद जी को भी क्षुल्लक संज्ञा दी गई हैं।

आधुनिक युग में आचार्य शान्ति सागर के पूर्ववर्ती मुनि का कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। भट्टारक युग में मुनि परम्परा अक्षुण्ण चलती रही। ऐलक क्षुल्लक, क्षुल्लिका वनने का उल्लेख भी इस परम्परा में मिलता हैं। मुनियों से इनके दीक्षित होने का उल्लेख मिलता है। कुछ व्रतियों अथवा महाव्रतियों के शिथिलाचारी होने की वात कभी कभी सुनने में आती है, शेष अपने अपने नियमों और चर्या में न्यूनाधिक मात्रा में सावधान हैं। नवीनदीक्षायें भी प्रतिवर्ष होती हैं। लिखने का अभिप्राय यह है एक दायरे में किसी भी आचार्य की छत्र छाया में व्रतियों अथवा महाव्रतियों का सामूहिक रूपेण चर्या तथा विहार होना ही श्रेयस्कर है। श्वेताम्बर साधुओं का सगठन एक विशाल संस्था के रूप में है और उस समाज ने अपने त्यागी व्रतियों की शिक्षा का भी विशिष्ट प्रवन्ध कर रखा हैं।

आज यह भी एक प्रश्न उभर रहा है कि धार्मिक और सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अध्ययन किये विना दीक्षा नहीं लेना देना चाहिये। इस प्रश्न पर समाज के अतिरिक्त दीक्षा देने वाले आचार्यों को विचार करना चाहिए।

समय परिवर्तन

(चारुदत्त चरित के आधार पर)

चतुर्थकाल का उपाख्यान है। चम्पापुरी नगरी में, तीर्थंकर वासपूज्य भगवान के समय में बत्तीस करोड़ स्वर्णमुद्रा स्वामी भानुदत्त नाम का श्रेष्ठि था। आज के हिसाब से उसके पास सवा अरब रुपया था। उसकी पत्नी ने एक सौभाग्यशाली पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का नाम चारुदत्त रखा गया। सेठ जी ने उसके जन्म से लेकर विवाह तक अपरम्पार द्रव्य खर्च किया। चारुदत्त अत्यन्त भोला भाला और मन्दकषायी जीव था। उसका विवाह उसके मामा की पुत्री से हुआ। पति पत्नी विषय वासनाओं से अनभिज्ञ थे। एक दिन चारुदत्त की सास भानुदत्त के यहां आई। उसने अपनी पुत्री को उदास देखकर उसकी उदासी का कारण पूछा। पहले तो पुत्री मां से शरमाई फिर एकान्त होने पर बोली तुम्हारा दामाद मुझसे तो बोलता तक नहीं। अपनी धुन का पक्का हैं, पढने लिखने में उसका समय व्यतीत होता हैं। यह जानकर चारुदत्त की सास को बहुत दुःख हुआ वह चारुदत्त की माता के पास जाकर उलाहना भरे स्वर में बोली कि, 'अगर अपने बेटे

को साधु महात्मा ही बनाना था तो मेरी बेटी का जीवन क्यों बर्बाद किया। भानुदत्त की पत्नी को भी यह बात चुभ गई। "स्त्री चरित्र पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतः मनुष्यः"। स्त्री के चरित्र को और पुरुष के भाग्य को मनुष्य तो क्या देव भी नहीं जान पाते। चारुदत्त की माता को यह सहन नहीं हुआ कि मेरा पुत्र इस प्रकार संसार से अन जान रहे। वंश कैसे चलेगा इकलौता पुत्र है? आगे क्या होगा? इत्यादि प्रश्न उसके दिमाग में उभरे।

चारुदत्त के चाचा का नाम रुद्रदत्त था। वह राज्य में किसी उच्च पद पर था। चारुदत्त की माता ने अवसर देखकर उससे कहा कि तुम्हारा बेटा क्या कोरा साधु बनेगा। सारी विगत घटना भी उसे सुनादी। रुद्रदत्त चंचल प्रकृति का मनुष्य था। उसने नगर की एक प्रसिद्ध वेश्या से सम्पर्क स्थापित किया और एक मतवाले हाथी के महावत से मिला। एक दिन मौका पाकर रुद्रदत्त चारुदत्त को लेकर वेश्या के घर ले चला। पूर्व योजना के अनुसार महावत भी उसी खूनी मतवाले हाथी के दौड़ने से कोलाहल मच उठा। रुद्रदत्त ने चारुदत्त को कुचले जाने का भय जताया और जब उस वेश्या का घर आया तब चारुदत्त का हाथ पकड़ कर वेश्या के घर मे प्रविष्ट हो गया। वेश्या तो रूद्रदत्त की योजना से पूर्व परिचित थी ही। इस वेश्या की एक अत्यन्त रुपवती कुवारी कन्या भी थी. उससे रुद्रदत्त ने कह रखा था कि चारूदत्त को कभी अकेला मत

छोड़ना। सदा विषय वासनाओं में फंसाए रखना, तुम्हें खूब धन मिलेगा। वेश्याएं तो धन की दासी होती ही हैं। 'होनहार बलवान''। चारुदत्त वसन्त सेना नामक उस वेश्या के साथ जुआ खेलने लगा। वेश्या ने अपनी रूपवती कन्या वसन्त तिलका को चारुदत्त के पास छोड़ दिया। दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गये। इस प्रकार काल व्यतीत होने लगा। चारुदत्त घर से धन मंगाकर खर्च करने लगा। भानुदत्त की पत्नी अपने पति से कहकर धन भिजवाती रही। उस बेचारी को क्या पता कि घर का सत्यानाश हो रहा है।

इसी प्रकार कुछ दिन गुजर गये। न तो चारुदत्त ही घर आया और न ही धन जाना बन्द हुआ। इस चिन्ता में भानुदत्त सूखने लगा। भानुदत्त निर्धन हो गया। आखिर एक दिन भानुदत्त का देहान्त हो गया। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर भी चारुदत्त घर नहीं आया। वह वेश्या-पुत्री के फन्दे में बुरी तरह फस चुका था। पिता की मृत्यु के पश्चात भी माता पुत्र को धन भेजती रही। कर्मों की गति बड़ी विचित्र हैं। पुत्र मोह को भी धिक्कार हैं। जब कुछ भी न रहा तो मकान भी गिरवी रखकर धन भेजती रही। माँ और पत्नी को एक दिन भूखे पेट ही रात गुजारनी पड़ी। अब वे दूसरों का सूत कातकर गुजारा करने लगी।

अब चारूदत्त के पास धन पहुँचना बिल्कुल बन्द हो गया तब वेश्या ने अपनी पुत्री से कहा कि अब इस दरिद्री (चारुदत्त)

से प्रेम करना छोड़ दो। यहाँ तक कि एक दिन भोजन में कुछ नशीला पदार्थ चारुदत्त को खिला दिया, रात्रि में जब वह बेहोश था, उसके हाथ पांव बांधकर, मुख पर कपड़ा बांधकर सड़क के संडास में डलवा दिया। चारुदत्त को तो होश भी नहीं था कि मैं कहां पड़ा हू। इसी तरह बेहोशी में कराहता हुआ दो दिन पड़ा रहा। अकस्मात शहर कोतवाल की दृष्टि चारुदत्त पर पड़ी उसने चारुदत्त को संडास से बाहर निकलवाया कोतवाल पहचान गया कि यह तो सेट भानुदत्त का पुत्र है तब उसे उसकी माता के पास ले गया।

चारुदत्त की पत्नी तथा माता एक झोंपड़ी में रहते थे। अपना घर न देखकर चारुदत्त घबराया किन्तु माता ने उसे धीरज बंधाया। उसे स्नान कराया, स्वच्छ वस्त्र पहनाये। चारूदत्त सूखकर कांटा हो गया था। माता की ममता और स्त्री के सतीत्व ने चारूदत्त के जीवन की दिशा बदल दी। कुछ दिन चारूदत्त को घर पर रहते व्यतीत हो गये। चारूदत्त ने एक दिन सोचा, घर तो बरबाद हो चुका, अब निकम्मा होकर घर बैठना उचित नहीं। वैश्य-पुत्र को व्यापार बिना चैन कहां ?

एकदिन चारूदत्त अपनी स्त्री और माता से कुछ पैसे लेकर घर से बाहर निकल गया। सबसे पहिले उसने उन पैसों से मूलियां खरीदी और नमक खरीदा। एक गधे पर लाद कर उन्हें बेचने चला। एक नदी मार्ग में आई। नदी में से जब गधा गुजरा तो नमक तो बहुत सा घुल गया और अधिकांश

मूलियां गधे ने ही खाली। इस व्यापार में उसे कोई लाभ नहीं हुआ, उल्टी पूंजी ही नष्ट होगई। घर आगया।

एक दिन समाचार भेज कर चारुदत्त के ससुर को चारुदत्त की माता ने बुलवाया। ससुर से कहा कि, "घरपर तो कोई काम धन्धा है नहीं निकम्मा होकर चारूदत्त बैठना नहीं चाहता बैठना भी नहीं चाहिए अतः कोई व्यापार करने यह विदेश जाना चाहता है। माता ने अपने भाई को बुलवा लिया सबने मिल कर रत्नद्वीप जाने का निश्चय किया। इसके ससुर ने दो व्यापारियों को और साथ चलने के लिए बुलवा लिया। शुभ मुहूर्त में चारों व्यक्ति व्यापार करने चल दिए। मार्ग में चारूदत्त माता द्वारा बताए गये। णमोकार मंत्र को जपता हुआ चला जा रहा है। पैदल ही चल रहे हैं। मार्ग में एक स्थान पर उन्होंने घायल और मरणासन्न एक कुत्ते को देखा। चारूदत्त के हृदय में उसे देख कर करुणा उमड़ पड़ी, उसने उस कुत्ते को णमोकार मंत्र सुनाया। मंत्र सुनकर कुत्ते के चित्त में शान्ति आई। वह अपने शान्त और शुभ भावों से मरकर देव हुआ। चारूदत्त और उसके साथी आगे चल पड़े। आगे चल कर उन्होंने देखा कि एक विद्याधर ने किसी दूसरे व्यक्ति को मंत्रों द्वारा कीलित कर दिया है। चारुदत्त ने इस विद्याधर को णमोकार मंत्र द्वारा उत्कीलित कर बन्धन मुक्त करदिया। विद्याधर ने चारुदत्त का बहुत उपकार माना।

चलते चलते ये लोग एक पहाड़ के समीप पहुँचे । इस पर्वत पर बकरों की सहायता से चढ़ सकते थे । सबने एक एक बकरा मोल ले लिया । पर्वत यात्रा समाप्त हुई, आगे सामने समुद्र था । उस जमाने में लोग समुद्र पार करने के लिए बकरे को मारकर उनकी खाल उल्टी कर उसमें घुस जाते थे । जिस छुरी से बकरा काटते थे उसे पास अन्दर ही रख लेते थे । फिर बकरे को इस तरह सीम लेते थे कि सांस लेने के लिए पवन भी जाती रहे । समुद्र तट पर भैरुड़ नामक पक्षी आते रहते हैं । वे इनकी बकरे वाली मांस पिंड की भाथड़ी को उठा कर ले जाते हैं और समुद्र के उस पार भाथड़ी को रख देते हैं ।

चारुदत्त तो परम दयालु था । वह मार्ग में चलने की थकान के कारण आराम कर रहा था, उसे अकस्मात नींद आ गई । इसके साथियों ने इस बीच बकरे काट डाले, बकरों के चिल्लाने की आवाज सुनकर चारुदत्त की आंख खुल गई । उसने सबसे पहले तो मरते हुए बकरे को णमोकार मन्त्र सुनाया फिर लोभ का मारा खुद भी एक भाथड़ी में घुस गया । थोडी देर बाद भैरुंड़ पक्षी आये और एक एक भाथड़ी को लेकर उड़ पड़े । चारुदत्त की भाथड़ी जिस भैरुंड पक्षी ने उठाई वह काना था । चारों पक्षी समुद्र पर उड़ रहे कि चारूदत्त वाले भैरूंड से दूसरा पक्षी लड़ने लगा । लड़ाई के कारण चारुदत्त की भाथड़ी भैरुंड की चोंच से छूटकर बीच समुद्र में गिर पड़ी । चारुदत्त ने छुरी से भाथड़ी काट डाली तो अपने

को समुद्र के बीच पाया। चारुदत्त समुद्र में तैरने लगा। अकस्मात उसके पुण्योदय से उसे एक लकड़ी का तख्ता हाथ लग गया। उस तख्ते की सहायता से वह तैरता हुआ समुद्र तट तक पहुंच गया। समुद्र में वह णमोकार मंत्र का स्मरण करता रहा जिससे कोई जीव जन्तु उसे खा नहीं सका।

जब चारूदत्त समुद्र तट पर पहुँचा तो उसे अपने साथी नजर नहीं आये। वहां एक विद्याधर बैठा था। विद्याधर चारुदत्त के पास आकर बोला, "मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आपका शुभ नाम क्या है? चारुदत्त ने अपना नाम बताया तो विद्याधर बोला, "ठीक है"। आप मेरे साथ चलिये चारुदत्त बोला मुझे तो रत्नद्वीप जाना है विद्याधर बोला रत्नद्वीप जाने का मार्ग तो यही है किन्तु पहले आप मेरे साथ चलिये। चारुदत्त ने कहा कि पहले मुझे श्री जैन मन्दिर ले चलो विद्याधर चारुदत्त को जैन मन्दिर ले गया। चारुदत्त ने भक्ति और विनय सहित भगवान के दर्शन कर अपने जन्म को कृतार्थ माना। वहीं एक मुनिराज विराजमान थे समीप ही उनका पुत्र बैठा था। अभी चारुदत्त ने मुनिराज को साष्टांग नमस्कार किया ही था कि आकाश से दो देवों के विमान आकर वहीं उतरे, उन्होंने देव दर्शन करके मुनिराज के समीप बैठे चारुदत्त को पहिले नमस्कार किया तत्पश्चात मुनिराज को किया। मुनिराज के पुत्र ने मुनिराज से प्रश्न किया कि यह क्या बात है कि पहले गृहस्थ को बाद में मुनिराज को प्रणाम

क्यों किया ? मुनिराज अवधि ज्ञानी थे उन्होंने बताया कि इन दोनों देवों का चारुदत्त ने पिछले भव में उपकार किया है मेरा भी इसने पूर्व जन्म में उपकार है किया । जिससे मैंने मनुष्य जीवन पाया । मुनिराज ने पूर्व वृत्तान्त सुना दिया । तदनन्तर चारुदत्त तो विमान में बैठकर विद्याधर के साथ चला जाता है और देव अपने अपने विमानों में बैठकर यथास्थान चले गये ।

विद्याधर के साथ चलकर चारुदत्त उसके स्वामी के भवन पर पहुंचा । विद्याधर का स्वामी चारुदत्त को देखकर परम प्रसन्न हुआ और उसने चारूदत्त का बहुत सम्मान किया । एक दिन उसने चारुदत्त से कहा यह मेरी एक गन्धर्वदत्ता नामक कन्या है । इसका प्रण हैं कि जो इसे वीणावादन कला में जीतेगा, मैं उसी के साथ विवाह करूंगी । तुम इस कन्या को ले जाओ और इसका इस हेत स्वयम्वर रचाओ यह कह उस विद्याधरों के स्वामी ने बहुत सा धन देकर चारूदत्त के साथ गन्धर्वदत्ता को विदा कर दिया । विमान में बैठकर वह दोनों और एक विद्याधर सेवक चम्पापुरी आ जाते हैं ।

चारूदत्त के चम्पापुरी आने के पूर्व ही वे सब जीव जिन्होंने चारूदत्त के द्वारा दिये हुए णमोंकार मत्र के प्रभाव से देवपद पाया था, चम्पापुरी आ गये । एक देव ने पहले ही आकर चारूदत्त के लिए एक अत्यन्त स्वर्ग के समान सुन्दर और विशाल भवन की रचना की और उसे दिव्य ऋद्धियों से

सम्पन्न कर दिया। जहां पहले उसकी माता और पत्नी झोपड़ी में रहती थी, वहां अब एक दिव्य राजभवन खड़ा हुआ था। यह सब धर्म का प्रभाव है। पुण्य की महिमा अपार है।

चारूदत्त राज श्रेष्ठि का पुत्र तो था ही, वह बहुमूल्य रत्नों की भेंट लेकर राजदरबार में पहुंचा, राजा को भेंट अर्पित की, राजा चारूदत्त के सौभाग्य, शील, विनम्रता आदि गुणों से परम प्रसन्न हुआ। और चारूदत्त की प्रार्थना पर उसे स्वयम्बर रचने की स्वीकृति प्रदान कर दी। देश के सभी राज्यों में स्वयम्बर होने के समाचार पहुँचा दिये। राजदूतों ने राजाओं और महाराजाओं को सूचित किया। स्वयम्बर मन्डप की रचना देवों द्वारा हो चुकी थी, नियत तिथि पर हरिवंशी समुद्र विजयादि दश भाई भी यहां पहुँचे। वसुदेव जो कि प्रच्छन्न रुप में देश देशान्तरों में घूम रहा था, वह भी गन्धर्वदत्ता के स्वयम्बर मण्डप में पहुंचा। सब लोग यथास्थान बैठे। अब चारुदत्त के आदेश पर गन्धर्वदत्ता ने स्वयम्बर मण्डप में प्रवेश किया। उपस्थित राजकुमारों को चारुदत्त ने गन्धर्वदत्ता की प्रतिज्ञा कह सुनाई। प्रतिज्ञा सुनकर क्रम से एक एक राजकुमार वीणा बजाने के लिए स्वयम्बर मण्डप के उच्च मंच पर आने लगे, लेकिन कोई ठीक प्रकार से वीणा को न बजा सका, अन्त में वसुदेव उठे उन्होने उन बहुत सी वीणाओं के दोष बतलाये, फिर एक

निर्दोष वीणा को मधुर स्वर में मुखरित कर दिया। वीणा की मधुर ध्वनि से स्वयम्वर मण्डप में निस्तब्धा छा गई गन्धर्वदत्ता वसुदेव की वीणा-वादन-कला पर मोहित हो गई। वसुदेव ने सब वीणाओं को छोड़कर देवोपुनीत वीणा बजाई थी, इस वीणा वादन से बहुत पहले देवों ने मुनि विष्णुकुमार की स्तुति की थी। अब गन्धर्वदत्ता ने अत्यन्त पुलकित होकर वसुदेव के कण्ठ में वरमाला पहना दी।

वसुदेव भी प्रकट होकर अपने सभी भाईयों से मिला। वसुदेव तो गन्धर्वत्ता को लेकर सपरिवार अपनी राजधानी चला गया। चारुदत्त चम्पापुरी में सपरिवार राजाओं के तुल्य सुख भोगने लगा। अन्तिम समय जिन दीक्षा ले ली, दुर्द्धर तपस्या की और उच्च पद पाया।

सेनापतिः–राजन् ! तथा मेरे प्यारे साथियो, मैं जिस समय युद्ध में होता हूँ उस समय अपने घोड़े पर सवार होते हुए भी अपनी आत्म चिन्तन की नित्य क्रियायें करता हूँ। और अपने देश की रक्षा के लिए युद्ध भी करता हूँ। जैनधर्म की अहिंसा कायरों का धर्म नहीं है, अपितु वीरों का धर्म हैं।

"क्षमा वीरस्य भूषणम्"।

राजा–सेनापति ! आप अपना कार्य करते जाइये। मैंने सुना हैं कि आपकी धार्मिक दृढता की शत्रु के हृदय पर गहरी छाप बैठी है और वह हमसे हार मानने को तैयार हो रहा।

सेनापति–हे राजन् ! जैन धर्म कायरी का धर्म नहीं है। वीर शिरोमणियों का धर्म है। मैं प्रतिदिन त्रिकाल सामायिकादि क्रियायें करता हूँ इनसे मेरा मनोबल दृढ रहता है, अन्य प्राणियों पर भी इसका उत्तम प्रभाव पड़ता है।

अन्त में एक दिन वह आता है जब सेनापति और राजा के पुण्य के प्रताप से इनकी विजय होती है। समस्त प्रजाजन तथा राजा भी जैनधर्म के अनुयायी बन जाते है।

सत्यमेव जयते, नानृतम्।

मिथ्यात्व

मिथ्यात्व का अर्थ है विपरीत श्रद्धान। अनादिकाल से इस जीव के अग्रहीत और ग्रहीत विपरीत श्रद्धान चल रहा है। आत्मा से पर पदार्थों में ममत्व बुद्धि "ममेदं" को अग्रहीत मिथ्यात्व कहते हैं। कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की श्रद्धा को ग्रहीत मिथ्यात्व कहते हैं। भव भ्रमण और दुख का कारण एक मात्र मिथ्यात्व ही हैं। यह समस्त पापों का मूल कारण हैं

प्रथम तीर्थंकार श्री आदिनाथ जी के समय का उन्हीं का पौत्र मारीच मिथ्यात्व के कारण ही एक कोड़ा कोड़ा सागर तक संसार में भटकता रहा हम सब प्राणी आज तक इसी के दुष्प्रभाव के कारण चौरासी लाख योनियों में भव भ्रमण कर रहे है। भोग भूमि में भी जीव मिथ्यात्व के कारण ही जन्म लेता हैं, यदि उसे सम्यक्त्व हो तो देव अथवा मनुष्य पद प्राप्त करें। विदेह क्षेत्र में दोनों प्रकार के जीव जन्म लेते हैं। वहां तीर्थंकरों के उपदेश का साधन है जो कि सम्यक्त्व प्राप्ति

का विशिष्ट कारण है। श्री अजीतनाथ जी से लेकर शीतलनाथ के समय तक धर्म का मार्ग निरन्तर चलता रहा। शीतलनाथ के समय में ही सुलसा नामक राजकन्या के निमित्त से घोर मिथ्यात्व का प्रचार हुआ। राजा वसु के निमित्त से हिंसात्मक मिथ्यात्व की तीव्र प्रवृत्ति बढ़ी, किन्तु अहिंसा धर्म का सर्वथा लोप नहीं हुआ। श्री नेमिनाथ स्वामी के समय में यादवों के निमित्त से हिंसात्मक मिथ्यात्व का बोलबाला रहा। श्री पार्श्व नाथ भगवान पर ध्यान के समय उपसर्ग करने वाला कमठ का जीव मिथ्यात्व का प्रचारक था। श्री महावीर स्वामी के समय में इन्द्रभूति (गौतम) ब्राह्मण ने मिथ्यात्व का प्रचार किया, बाद में गौतम ने जिनधर्म को अंगीकार कर सम्यक्त्व का प्रचार किया। इसी समय एक मसकरी मत चला, जिससे कालान्तर में इस्लाम मत की उत्पत्ति हुई। इस समय हिंसात्मक यज्ञों का विशेष प्रचार था। धर्म के नाम पर घोर हिंसा हो रही थी। भगवान महावीर और गौतम बुद्ध ने हिंसात्मक यज्ञों के विरोध में अहिंसा धर्म का प्रचार किया कालान्तर में शंकराचार्य ने वैदिक धर्म के नाम पर मिथ्यात्व का ही प्रचार किया। स्वामी अकलंक देव, श्री जिनसेनाचार्य, स्वामी माणिक्यनन्दी, स्वामी विद्यानन्दी, मुनि शिवकोटि, स्वामी समन्त भद्र इत्यादि जैनाचार्यों ने मिथ्यात्व का निराकरण करके सम्यक् धर्म को प्रतिष्ठित किया। भट्टारक सम्प्रदाय के शिथिलाचार को निरस्त करने में आधुनिक युगीन आचार्यों

का योगदान प्रशंसनीय है। आचार्य शान्तिसागर महाराज ने भट्टारक मत के विरुद्ध दिगम्बर मुनि मार्ग की परम्परा को प्रचलित किया। आज उनकी मुनि परम्परा में अनेक मुनि राज विराजमान हैं जो कि मिथ्याधर्म का निराकरण करके सम्यक धर्म के प्रचार में लगे हुए हैं।

वसुदेव-चरित पर आधारित

(एकांकी)

स्थान—एक ऊंची पहाड़ी पर तीन दिगम्बर मुनि विराजमान हैं एक गुरु है, दो उन्हीं के शिष्य हैं। अकस्मात् एक व्यक्ति इनकी ओर झांकता हुआ दृष्टिगोचर होता हैं।

लघु शिष्य मुनि—(दूसरे शिष्य मुनि से) देखो भाई, वह कौन हैं जो हमारी ओर झाँक झांक कर देख रहा है, क्या चाहता हैं। देखने से तो कोई सुशील सज्जन प्रतीत होता हैं।

इतने में झांकने वाला व्यक्ति समीप आ जाता है।

आगन्तुक-(प्रणाम करके) महाराज मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूं।

दोनों शिष्य मुनि-पहले गुरु महाराज पर अटल श्रद्धान करके ध्यान से धर्म का स्वरूप सुनो।

आगन्तुक-महाराज मैं तो अज्ञानी हू, आप ही धर्म का मार्ग बताइये जिससे मेरा आत्म कल्याण हो।

आचार्य-प्रथम सच्चे देव शास्त्र, गुरु की श्रद्धा करो।

आगन्तुक-महाराज ! मुझे देव, शास्त्र, गुरु पर पूर्ण विश्वास हैं, आप आज्ञा कीजिए, वही करूंगा।

आचार्य--वत्स ! क्या तुम मुनि धर्म अंगीकार करोगे ?

आगन्तुक-महाराज ! मुझे संमय धर्म का उपदेश दीजिए

आचार्य-मुनि धर्म का संयम २८ मूल गुण रूप हैं। क्या तुम उसे स्वेच्छा से स्वीकार करोगे।

आगन्तुक--मुझे सहर्ष स्वीकार है।

(नेपथ्य से) सूत्रधार-आचार्य आगन्तुक को दिगम्बर दीक्षा प्रदान करते हैं। मुनि निर्विचिकित्सा अंग (दूसरों से घृणा नहीं करना) में विशेष तत्पर है। स्वर्ग में उनकी प्रशंसा होती है। एक देव मुनि रूप धारण करके परीक्षा करने आता

है। नगर से आहार करके आता दिखाई देता है और इस मुनि पर वमन कर देता है। यह नवीन मुनि इस मुनि रूपधारी देव की सेवा करता हैं। लोगों से इनके वमन रोग के उपचार के लिए कहता हैं। मन में नाम मात्र भी घृणा अथवा क्रोध नहीं लाता हैं।

मुनिवेशधारी देव-(मन में) यह तो साक्षात प्रशंसा के पात्र हैं।

सूत्रधार-नए मुनि घोर तपश्चरण करके समाधि मरण करते हैं और स्वर्ग में जन्म लेते हैं। देव पद प्राप्त करते है। देव को अपने पूर्व जन्म की स्मृति आती हैं। उसे अवधि ज्ञान से पता चलता हैं कि मैंने पूर्व जन्म में मुनि धर्म का पालन किया था, तपस्या की थी, उसके प्रभाव से यह देव पद पाया हैं। देव विचार करता हैं कि अब यहां से मर कर मैं पुनः मनुष्य जीवन प्राप्त करूं जिससे मोक्ष प्राप्त कर सकूं।

देवगति से आकर यह जीव वसुदेव (श्री कृष्ण के पिता) के नाम से जन्म लेता है। भगवान नेमिनाथ के पिता समुद्र विजय इनके सबसे बड़े भाई।

दृश्य—राजदरबार (समुद्रविजय सम्राट का)

प्रजाजन--महाराज! आपके वसुदेव इतने चंचल प्रकृति के हैं कि जब नगर विहार के लिए निकलते हैं तो समस्त नगर में कोलाहल पूर्ण वातावरण हो जाता है।

सम्राट, अच्छा हम उन्हें समझा देंगे।

(एक दरबारी से कहकर वसुदेव को एक राजोद्यान के राजमहल में रखा जाता है।

वसुदेव--क्या कारण है कि जो मुझे यहां वन्दी के समान जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है।

उद्यान का माली--राजकुमार! बड़े महाराज की आज्ञा से अब आपको इधर ही रहना है। नगर में नहीं जाना है।

वसुदेव—मैं यहां वन्दी बनकर नहीं रहूँगा।

(सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार--वसुदेव एक रात्रि को वस्त्रा भूषण सहित उद्यान के बाहर चले जाते हैं शमशान में पहुँच कर अपने वस्त्रा भूषण एक मुर्दे को पहनाकर उसे एक जलती चिता में डाल देते हैं और स्वयं साधारण वस्त्रों में देशान्तर गमन करते हैं।

समय—प्रभातकाल, स्थान—राजदरबार

उद्यान का माली—राजन्! राजकुमार वसुदेव तो पता नहीं चुपचाप कहां चले गये। सुना है, शमशान में उनके आभूषण पड़े हुए हैं।

सूत्रधार—शमशान में जाकर राज परिवार वाले वसुदेव के आभूषणों को देखते हैं और शोकमग्न हो जाते हैं। वसुदेव शमशान से निकल कर अनेक देश देशान्तरों में भ्रमण करते

हुए एक राजा के स्वयम्बर मण्डप में पहुंचते हैं। यहां एक विद्याधर राजा की राजकन्या गन्धर्वदत्ता का स्वयम्बर होनेवाला था। राजकन्या की प्रतिज्ञा थी कि जो मुझे वीणावादन कला में जीतेगा मैं उसी के साथ विवाह करूंगी। अनेक राजकुमार वीणा बजाने में असफल होते हैं। इन राजकुमारों में समुद्र विजयादि राजे महाराजे भी थे। राजकन्या भी वीणा बजाती है किन्तु उसके समान बजाने में सभी असफल होते हैं।

वसुदेव--इससे भी बढ़कर निर्दोष वीणा लाओ, मैं बजाऊंगा। वसुदेव देवोपुनीत वीणा बजाते हैं। गन्धर्वदत्ता वीणावादन कला में वसुदेव से हार मानती है और वसुदेव के कन्ठ में वरमाला पहना देती है। वसुदेव का गन्धर्वदत्ता के साथ विवाह सम्पन्न होता है। वह प्रकट रूप में समुद्रविजयादि भ्राताओं से मिलता है। गन्धर्वदत्ता को साथ लेकर भाईयों सहित अपनी राजधानी द्वारिकापुरी चला जाता है।

:।: अटल श्रद्धा :।:

(श्रेणिक चरित्र पर आधारित)

आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व की बात है। राजगृही नगरी के राजा उपश्रेणिक को एक शत्रु राजा ने मायामयी घोड़े द्वारा अपहरण करने का निश्चय किया। यह चंचल माया-मयी घोड़ा राजगृही पहुँचा, राजमहल के समीप जब राजा ने उस घोड़े को देखा तो उसे अपने सेवकों से पकड़वाकर अविलम्ब उस पर सवारी की। सवारी करते ही वह घोड़ा आकाश से बातें करने लगा। सेवक लोग देखते ही रह गए।

वह घोड़ा राजा को लेकर जंगल में पहुँचा और उन्हें एक खड्ड में गिरा दिया। राजा घायल होकर बेहोश हो गया। समीप ही एक राजा भीलों का वेश धारण कर भीलों की बस्ती में रहता था, उसने राजा के कराहने की आवाज सुनी, वह तुरन्त खड्डे के समीप पहुँचा। राजा को सत्पुरुष जानकर उसे खड्डे से बाहर निकाला और अपनी झोंपड़ी में ले गया। सेवा सुश्रूषा की। राजा को जब पूरा होश आया तब भील वेशधारी राजा ने उससे भोजन करने की प्रार्थना की। राजा ने पूछा

कि तुम कौन हो। उसने उत्तर दिया मैं भील हूँ किन्तु माँसाहारी नहीं हूं। पहले भील नहीं था, क्षत्रिय था। राजा ने उसका भोजन स्वीकार नहीं किया, तब भील ने कहा, "मेरी पुत्री व्रती है, उसके हाथ का भोजन तो स्वीकार करो।" राजा सहमत हो गया। भील पुत्री ने रसोई तैयार की, और राजा ने वह शुद्ध भोजन किया। बहुत समय तक राजा इस भील की झोपड़ी में रहा। राजा अब पूर्ण स्वस्थ हो गया।

राजा ने भील परिवार में भील कन्या के रूप सौन्दर्य को देखकर विचार किया कि किसी प्रकार इस कन्या से विवाह करना चाहिए। राजा उस पर मोहित हो चुका था। उसने उसके पिता से निवेदन किया कि वह अपनी कन्या का विवाह मुझसे कर दे। भील ने कहा कि हे राजन! आपके परिवार में अनेक रानियां होंगी। मेरी पुत्री तो आपकी दासी मात्र बनकर रह जायगी। राजा ने कहा मैं तुम्हारी पुत्री को महारानी बनाऊंगा। और उसका पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होगा। भील विवाह के लिये सहमत हो गया। कन्या भी राजा पर पूर्णतया मोहित हो चुकी थी। भील की पत्नी भी सहमत थी। अन्ततः राजा का भील की पुत्री से विवाह सम्पन्न हो गया। पाणिग्रहण के अवसर पर राजा ने प्रतिज्ञा की कि मैं भील कन्या को रानी और उसके पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाऊंगा।

विवाह सम्पन्न हो गया। इधर राजा के सेवक भी

राजा को खोजते हुए वहीं आ पहुंचे। राजा उस भील कन्या को लेकर सेवकों सहित राजगृही आ गया। भील कन्या अन्य रानियों के साथ आनन्द के साथ रहने लगी। राजा के पहले ही ५०० पुत्र थे। कालान्तर में भील कन्या से राजा के पुत्र हुआ इसका नाम चिलाती रखा गया। यही चिलाती आगे चलकर अजातशत्रु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा के सबसे बड़े पुत्र का नाम श्रेणिक था।

एक दिन राजा ने विचार किया कि मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ। सभी राजकुमार अब बड़े हो चुके हैं। राज्य करने में समर्थ हैं। अपना राज्य का उत्तराधिकारी मैं किसे बनाऊं। राजा ने सभी राजकुमारों की परीक्षा लेने का निश्चय किया। यद्यपि भील कन्या के पुत्र को राज्य देने का मैंने प्रण किया था, तथापि योग्य को राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहिए। राजा ने सभी राजकुमारों को बुलाकर उन्हें कुछ शर्तें बताईं। १. ओस से मिट्टी का घड़ा भरना। २. रस्सी से बधे बन्द टोकरे को खोले बिना लड्डू खाए। ३. सामान भरे कमरे से जिसमें सिंहासन, छत्र चमर भी थे, आग लगने पर सामान की सुरक्षा करना।

१. प्रथम परीक्षा में सभी ५०० राजकुमार हार गए, कोई भी ओस से घड़ा न भर सका श्रेणिक ने रूई के फोहे से केले के पत्तों के ऊपर की स्वच्छ ओस से घड़ा भर दिखा दिया। श्रेणिक जीत गया।

२. दूसरी परीक्षा में बन्द टोकरे को खोले बिना कोई भी राजकुमार लड्डू न खा सका, श्रेणिक ने जोर से टोकरा हिलाया. जिससे लड्डू फूट फूट कर कण कण हो गए, और उस सींकों के टोकरे से झड़ने लगे, श्रेणिक ने उन्हें खाकर दिखा दिया और विजय पाई।

३. तीसरी परीक्षा में आग लगने पर और राजकुमार तो कपड़े, खाने का सामान, बर्तन इत्यादि लेकर भागे किन्तु श्रेणिक राजचिन्ह सिंहासन छत्र, चंवर इत्यादि लेकर भागा, उसने सोचा राजचिन्हों से राजा की सत्ता रहेगी तो अन्य सामानों की क्या कमी रहेगी। इस परीक्षा में श्रेणिक विजयी हुआ।

अब चौथी और अन्तिम परीक्षा थी। ५०१ सोने के थालों को खीर से भरा गया। ५०० शिकारी कुत्ते छोड़े जाने थे इन खाने वालों पर। शर्त यह थी कि खीर भी खाता जाए और कुत्तों को भी खिलाता जाये। ज्योंही कुत्ते इन राजकुमारों को अपनी अपनी ओर आते हुए दिखाई दिये, समस्त राजकुमार तो भाग गये किन्तु श्रेणिक एक हाथ से तो अपने थाल की खीर खाता गया और दूसरे हाथ से एक एक थाल कुत्तों की ओर फेंकता गया। एक भी कुत्ता श्रेणिक के पास नहीं आया। इस तरह इस चौथी परीक्षा में भी श्रेणिक की विजय हुई।

राज्य तो चिलाती को देना था, किन्तु अब राज्य का उत्तराधिकारी श्रेणिक बन चुका था, राजा इसलिए चिन्तित था, एक बुद्धिमान मन्त्री ने राजा को चिन्तित देखकर कहा कि हे राजन्! श्रेणिक ने कुत्तों की झूठी खीर खाई है इसलिए वह राजा नहीं बनाया जा सकता श्रेणिक को जब इस बात का पता चला तो वह स्वयं ही राज्य छोड़कर अन्यत्र चल दिया। मार्ग में उसे एक व्यक्ति मिला वह श्रेणिक को बौद्ध साधु के पास ले गया। दोनों ने बौद्ध साधु को नमस्कार किया। साधु ने श्रेणिक को सौभाग्यशाली जानकर उसे मंत्रित चावल देकर कहा इन चावलों को जिस भी कार्य में प्रयोग करोगे, वही कार्य सिद्ध हो जावेगा। तुम्ही नहीं दूसरा भी लाभ उठायेगा। मंत्रित चावलों को लेकर श्रेणिक वहां से चल दिया। वह व्यक्ति भी अपनी कार्य सिद्धि मान वहां से चल दिया। मार्ग में एक अन्य व्यक्ति श्रेणिक को मिला, यह अपने गांव जा रहा था। श्रेणिक इसके साथ हो लिया। इस अपरीचित व्यक्ति से श्रेणिक बोला, "मामा कहां जा रहे हो? उसने उत्तर दिया अपने गांव घर को जा रहा हूं। दोनों बात करते आगे चले।

सामने एक हरा भरा खेत था। श्रेणिक ने प्रश्न किया, "मामा! यह खेत खाया गया है या खाया जाएगा। मामा निरुत्तर रहा। श्रेणिक के पूछने का अभिप्राय था कि यह खेत ऋण लेकर बोया था अथवा अपनी ही पूंजी से बोया था। आगे एक स्त्री को पेड़ से बाँधकर लोग उसे पीट रहे थे।

श्रेणिक ने प्रश्न किया, "मामा जी यह स्त्री बंधी है या खुली मामा निरुत्तर रहो। श्रेणिक के पूछने का अभिप्राय था कि स्त्री व्यभिचारिणी है या शीलवती। थोड़ी दूर चलने पर बूंदें पड़ने लगी तब श्रेणिक छाता खोल कर एक वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया। वर्षा बन्द होने पर धूप में श्रेणिक ने छाता बन्द कर लिया, आगे चल दिया। मामा जी बड़े चक्कर में कि यह आदमी बड़ा बेवकूफ है श्रेणिक ने तो वृक्ष के नीचे छाता इसलिए लगाया था कि पेड़ के ऊपर से सांप इत्यादि जहरीले जीव जन्तु उस पर अपना जहर न डाल दें। आगे मार्ग में एक नदी आई। श्रेणिक अब तक नंगे पांव था, अब उसने फौरन अपने जूते पहन लिए, और जल में प्रवेश कर नदी पार की। मामा जी समझे हो न हो, यह आदमी पागल है। श्रेणिक के जूते पहनने का अभिप्राय तो यह था कि नदी के अन्दर के कांटे, कंकर, जीव जन्तु तो दिखाई नहीं देते, मार्ग के सभी दिखाई देते हैं, अतः नदी में जूते पहनना जरूरी है। नदी के बाहर आते ही श्रेणिक फिर अपने जूते पैरों से निकाल कर हाथ में ले लिए और नंगे पांव चलने लगा। अब चलते चलते मामाजी का गांव आ गया। मामा जी ने कहा कि तुम गांव के बाहर रहो, मैं तुम्हें लेने अन्य व्यक्ति को भेजूंगा; उसके साथ मेरे घर आ जाना, जाना नहीं। श्रेणिक गांव की सीमा पर रुक गया।

मामा जी अपने घर पर पहुँचे। इनके एक कन्या थी

नाम था नन्द श्री। मामा जी ने श्रेणिक के साथ घटी अटपटी घटनाओं को नन्द श्री को बताया और कहा शायद वह पागल है। नन्द श्री ने कहा वह पागल नहीं, बल्कि विशेष चतुर है। नन्द श्री ने भी श्रेणिक की परीक्षा लेने के लिए श्रेणिक के आने के मार्ग में कीचड़ करवा दी फिर एक कटोरी में जल तथा एक नीम की टहनी और सरसों के तेल में भीगा फाया देकर भेज दिया। दासी गांव के बाहर पहुंची, उसके नीम की टहनी के इशारे से श्रेणिक संकेत समझ गया, तत्काल चल दिया। मार्ग में इतनी कीचड़ कि दूसरा रास्ता नहीं। श्रेणिक कीचड़ में पांव रखता हुआ आगे बढ़ा, कीचड़ समाप्त होने पर उसने एक स्थान पर पानी भरी कटोरी और तेल का भरा रूई का फाया देखा। श्रेणिक ने पहले तो पत्तों से कीचड़ पोंछी, फिर कटोरी के जल से पांव धोए और रूई के फाहे से पैरों को मसल कर उन्हें स्वच्छ सुन्दर बना लिया। किन्तु दासी कहीं नजर नहीं आई। श्रेणिक चिंतित नहीं हुए। गांव के अन्दर पहुंचे। एक जगह पर उन्होंने नीम की टहनी लगी देखी, फौरन समझ गए, यही मामा जी का घर है। द्वार पर पहुँचे, नन्द श्री ने पहले श्रेणिक के पावों पर दृष्टि डाली उन्हें स्वच्छ देखकर उनका स्वागत किया संकेत से उसे एक आसन पर बिठा दिया।

नन्द श्री ने दासी द्वारा उससे पूछा कि आप किस प्रकार का भोजन करते हैं। उत्तर मिला, "जैसा आप बनाती हैं।"

परन्तु मैं अपने साथ सामान लाया हूँ, उसका ही बनना चाहिये। श्रेणिक ने बौद्ध साधु से प्राप्त मंत्रित चावल दासी को दे दिये। श्रेणिक भी नन्द श्री की बुद्धि परीक्षा करना चाहता था। दासी ने चावल लाकर नन्द श्री को दिए। उसने दासी को कहा कि पहले इन चावलों को पानी में भिगो दो, फिर पिट्ठी बनाकर इनकी गोलियां बना लो और सुखा लो। दासी ने ऐसा ही किया। फिर नन्द श्री ने दासी से कहा कि अब इन गोलियों को जुआ खेलने वालों के अड्डे पर ले जाओ, वहां जाकर जुआरियों से कहना कि मेरे पास देवी के मंत्रों से मंत्रित गोलियां हैं, जिसके पास ये गोलियां होंगी वह जुआ खेलने में भारी लाभ उठायेगा। दासी ने ऐसा ही किया। जुआरी इन गोलियों को पाने के लिए दाम लगाने लगे, दासी ने सबसे अधिक दाम लगाने वाले को गोलियां देकर धन प्राप्त किया और उसी धन से बहुत सा उत्तम भोजन का सामान अपनी मालकिन की आज्ञानुसार बाजार से खरीद लाई।

नन्दश्री ने उस सामान से शुद्ध और सुगन्धित भोजन तैयार किया और वह स्वादिष्ट भोजन श्रेणिक को परोसा। जब श्रेणिक भोजन कर चुका तब विश्राम किया। विश्राम के पश्चात नन्दश्री और श्रेणिक में परस्पर वार्तालाप होने लगा। नन्दश्री के पिता ने उपर्युक्त समस्त घटनाओं के आधार पर नन्दश्री की इच्छानुसार श्रेणिक के साथ नन्दश्री का विवाह

शुभ मुहूर्त में कर दिया। श्रेणिक राजपुत्र तो था ही, इसलिए नन्दश्री का पिता भी प्रसन्न था।

दोनों आनन्दपूर्वक यहीं रहने लगे। कालान्तर में नन्दश्री ने अभयकुमार नामक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र बड़ा रूपवान तेजस्वी, बुद्धिमान और होनहार निकला। अब श्रेणिक के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि अपना राज्य प्राप्त करना चाहिए।

अपने पुरुषार्थ और बुद्धिबल पर भरोसा कर श्रेणिक पत्नी और पुत्र को यहीं छोड़कर राजगृही की ओर चल पड़ा। राजगृही पहुंच कर वह नगर के बाहर एक उद्यान में ठहर गया। श्रेणिक ने भील पुत्र चिलाती के पास सन्देश भेजा कि राज्य का उत्तराधिकारी मैं हूँ। तुम राज्य कर चुके अब मेरा राज्य मुझे दो, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। चिलाती बेचारा राजनीति से अनभिज्ञ था ही. मन्त्रीगण और प्रजाजन भी उससे सन्तुष्ट नहीं थे। अतः मन्त्रियों से परामर्श करके उसने श्रेणिक को राज्य देने का निश्चय किया। श्रेणिक को सम्मान पूर्वक उद्यान से राजदरबार में लाया गया और शुभ मुहूर्त में उसका राज्यभिषेक बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न किया गया।

कुछ दिनों पश्चात श्रेणिक ने सोचा कि अपने पुत्र

अभयकुमार को बुलाना चाहिए। अब अभयकुमार आठ वर्ष का हो चुका था। श्रेणिक ने उसकी बुद्धि की परीक्षा करने

के लिए उसके गाँव में जो ब्राह्मण चौधरी थे, उनके पास एक हाथी भेजा और नौकरों से कहलवाया कि शीघ्र ही इस हाथी का वजन कर हमें सूचित करो अन्यथा सभी को राजदण्ड दिया जायेगा।

राजाज्ञा को सुनकर ब्राह्मण घबरा गये, तभी एक ब्राह्मण बोला नन्दश्री का पुत्र अभयकुमार बहुत बुद्धिमान है; उसके पास चलो, सब जने उसके पास गये।

उन्होंने अभय कुमार से कहा कि इस हाथी को किस प्रकार तोला जाए। अभयकुमार ने कहा घबराओ नहीं अभी प्रबन्ध हो जाता है। पहले एक बहुत वजनी पत्थर लाओ। जो लम्बा भी हो और चौडा भी। उसी के साथ कुछ कम वजन के भी पत्थर लाए जायें। जब तमाम पत्थर आ गए तब उस बड़े पत्थर का एक पत्थर पर इस प्रकार रखा गया कि बड़ा पत्थर छोटे पत्थर की नोक पर सीधा हो गया। अब बड़े पत्थर के एक तरफ हाथी को खड़ा किया गया और दूसरी तरफ पत्थर रखे गए। जब पत्थर फिर से सीधा हो गया तब अभयकुमार ने कहा कि अब इन छोटे पत्थरों को तोल लो। जितना इन छोटे पत्थरों का वजन हो वह लिखकर हाथी के साथ भेज दो। यही हाथी का वजन है। सब लोग अभयकुमार की बुद्धिमत्ता को देखकर दंग रह गए।

एक दिन श्रेणिक ने एक बकरा इन ब्राह्मणों के पास

भेजा और कहलवाया कि इस बकरे को एक माह बाद वापिस कर देना किन्तु बकरे का वजन घटना बढना नहीं चाहिये। ब्राह्मण अभयकुमार के पास गए। अभयकुमार ने कहा कि बकरे को दिन भर खूब खिलाओ पिलाओ और सांय शेर के सामने बांध दो। ऐसा ही किया गया। बकरा शेर के भय के कारण मोटा नहीं हो सका। खिलाने पिलाने के कारण दुर्बल नहीं हुआ एक महीने के बाद बकरा राजधानी को ज्यों का त्यों भेज दिया गया।

अब श्रेणिक ने ब्राह्मणों के पास सन्देश भेजा कि गांव के सभी लोग राजधानी आवें, उस समय न दिन हो और न ही रात न पैदल हो, और न गाडी पर। ब्राह्मणों ने अभयकुमार से परामर्श किया अभयकुमार ने कहा कि एक पैर एक गाडी में दूसरा दूसरी गाडी में रखो और गोधूलि वेला में राजधानी पहुंचो। ऐसा ही किया गया। राजा इस बुद्धिमत्ता से प्रभावित हुआ।

अब की बार आज्ञा हुई कि गांव के कुएं, बावड़ी, नदी साथ लेकर आओ। अभयकुमार ने बताया कि जब राजा के सोने का समय हो तब ढ़ोल बजाते हुए राजमहल के समीप पहूँचो। ऐसा ही किया गया। महल के समीप पहुंच कर वे लोग चिल्लाने लगे, जगह बताओ कि इन कुए बावड़ियों को कहां ठहराएं। श्रेणिक नींद के नशे में तो था ही, बोला जहां

से इन्हें लाए हो, वहीं पहुंचा दो। सब लोग लौट गए।

प्रातः श्रेणिक ने सोचा कि मालूम करें कि ब्राम्हणों के बीच कौन सा बुद्धिमान व्यक्ति है जो सारी समस्याओं को हल कर देता है। पता चला कि अभय कुमार की बुद्धिबल पर ही सभी समस्याएं हल हुई हैं। तब श्रेणिक ने अभय कुमार को सम्मान और समारोह पूर्वक नगर प्रवेश कराया। कुछ दिनों पश्चात नन्दश्री को भी बुलवा लिया गया। अभय कुमार को प्रधान मंत्री का पद दिया गया। वह राजमहल में माता सहित आनन्द से रहने लगा। राज दरबार में न्याय के सभी काम अभय कुमार करता था।

कुछ दिनों पश्चात राजा श्रेणिक को पता चला कि वैशाली के राजा चेटक के सात पुत्रियां हैं। सभी सुन्दर, रूपवती और गुणवती हैं। श्रेणिक ने गुप्तचर भेजकर मालूम कर लिया कि उन सातों पुत्रियों में चेलना सबसे अधिक रूप-वती और गुणवती है। वह सबसे बड़ी है। चेलना के चेहरे पर एक काले रंग का मस्सा है यह भी गुप्तचर ने आकर बताया। राजा श्रेणिक ने ये पहचान बताकर चेलना को लाने का काम अभय कुमार को सौंपा।

अभय कुमार भेश बदल कर राजा चेटक की राजधानी पहुँचा, वहां उसने चूड़ियां बेचने वाले का भेश धारण किया,

और नाना देशों की सुन्दर से सुन्दर बहुमूल्य चूड़ियां लेकर राजमहल के समीप पहुंच कर चूड़ियां बेचने की आवाजें लगाने लगा। राजकन्याएं राजमहल से नीचे उतर आईं। केवल चेलना नहीं आई। वह ऊपर झरोखे से झांकती रही। चेलना ने चूडी वाले को राजमहल में ही बुलाने का विचार किया। क्योंकि बाहर रास्ता चलने वालों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। जब राजकुमारी चेलना ने अभय कुमार को नौकर के द्वारा बुलवाया तब अन्य राजकुमारियाँ भी राजमहल में आ गई। अभय कुमार ने पहरेदार के द्वारा राजाज्ञा प्राप्त कर राजमहल में प्रवेश किया। सभी राजकुमारियां अभय कुमार को घेर कर बैठ गईं और अपनी अपनी पसन्द की चूडियां पहनकर इधर उधर हो गई, अन्त में चेलना रह गई। अभय ने चेलना को पहचान लिया और उसे श्रेणिक का चित्र पट दिखलाया चेलना श्रेणिक का चित्र पट देखकर श्रेणिक पर मोहित हो गई। श्रेणिक के रूप और गुणों के सम्बन्ध में चेलना ने पहले ही सुन रखा था। अभय कुमार उस दिन तो चेलना के मनोभावों को पढ़ कर चला गया। अब प्रतिदिन राजकुमारियों के लिए उपयोगी वस्तुए लेकर राजाज्ञा से बेरोकटोक राजमहल में जाने लगा। एकान्त में चेलना से मिला और श्रेणिक का सन्देश कह सुनाया। चेलना प्रेम विव्हल हो उठी, और अभय कुमार के साथ चलने को प्रस्तुत हो गई। अन्य राजकुमारियां भी साथ जाना चाहती थी किन्तु बाद में उनका विचार बदल गया। चन्दना

और चेलना गुप्त रूप से अभय कुमार के साथ राजमहल से बाहर निकली। चन्दना तो रास्ता भटक कर जंगलों में जा पहुंची किन्तु चेलना बराबर अभय के साथ साथ चलती रही। चन्दना भीलों के हाथ पड़ गई। महावीर स्वामी के निमित्त से उसका उद्धार हुआ। (देखिये-चन्दना चरित) अभय कुमार चेलना को लेकर राजगृही पहुँच गया। पाँचों राजकुमारियों ने सारा वृत्तान्त अपने पिता से कहा। चेटक तो राजा श्रेणिक के अधीन राज्य करता था, इसलिए सब सुनकर जानबूझ कर चुप रहा। होनहार बलवान

राजा श्रेणिक और चेलना आनन्द पूर्वक अपना राज्य सुख भोगने लगे। चेलना जैनधर्म की कट्टर श्रद्धानी थी। श्रेणिक बौद्ध धर्म का अनुयायी था। अनेक जैन मुनि उसके राज महल में आहार ले चुके थे। आहार देने वाली चेलना थी। राजा श्रेणिक को यह पसन्द नहीं था। चेलना बौद्ध साधुओं का आदर सत्कार नहीं करती थी। उसने उनकी परीक्षा लेकर श्रेणिक के सामने सिद्ध कर दिया था कि ये सच्चे गुरु नहीं हैं।

एक बार श्रेणिक शिकार खेलने वन में गया। वहाँ उसने परमध्यानी, दिगम्बर मुनि यशोधर के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। श्रेणिक राजमहल आ गया। तीसरे दिन उसने यह घटना चेलना को सुनाई। चेलना यह सुनकर बोली 'हाय हाय यह तुमने बहुत बुरा किया'' यह कहते हुए

मूर्छित होकर गिर पड़ी। जब होश आया तब बोली तुमने जैन मुनि को कष्ट देकर और उनका अपमान करके नर्क जाने का पाप बंध किया। राजा श्रेणिक को इस कर्म से सातवें नर्क बन्ध हो चुका था। राजा बोला, "अरी बावली इतनी दुखी क्यों होती है? यह घटना तीन दिन पहले की है, वह साधु तो गले का सांप फेंककर कभी का भाग गया होगा। चेलना बोली यह कदापि सम्भव नहीं। यदि वे मेरे गुरु हैं तो वे वहीं मेरु की तरह अचल मिलेंगे। निदान राजा और चेलना दोनों वन में पहुँचे वहां जाकर देखा कि यशोधर मुनिराज उसी प्रकार आत्म ध्यान में लीन हैं, मरा हुआ सांप उनके गले में पड़ा हुआ हैं। लाखों चीटियां उनके शरीर से चिपटी हुई हैं। रात्रि काल था। चेलना ने एक उपाय किया उसने मुनिराज के पास खांड डाल दी, चीटियां उसकी गन्ध से मुनिराज के शरीर से उतरकर खांड पर आ गई। रही सही चीटियों को कोमल वस्त्र से झाड़ दिया। उनके शरीर पर चन्दन का लेप किया। जब प्रभात हुआ; मुनिराज का ध्यान समाप्त हुआ। उन्होंने चेलना और श्रेणिक दोनों को समान रुप से धर्म वृद्धि रुप आशीर्वाद दिया।

श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये साधु कितने महान हैं कि शत्रु और मित्र दोनों को समान दृष्टि देखते हैं। राजा श्रेणिक अपनी निन्दा करने लगा, और आत्मघात करने की

का त्यौहार प्रचलित है। एक दिन श्रेणिक ने गौतम स्वामी से प्रश्न किया कि मेरे संयम धारण करने के परिणाम क्यों नहीं होते, गौतम स्वामी बोले, "तुम्हारे नरकायु का बन्ध हो चुका है, अतः तुम्हारे संयम धारण करने के परिणाम नहीं होते। तुम समोशरण में ही क्षायिक सम्यक्त्व के प्रभाव से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करके, सातवें नरक जाने की ३३ सागर की आयु को केवल ८४ हजार वर्ष रूप कम करके प्रथम नरक जाओगे, वहां से निकल कर उत्सर्पिणी के प्रथम काल में प्रथम महापद्म नाम के तीर्थंकर बनोगे। राजा श्रेणिक यह सुनकर परम प्रसन्न हुआ।

एक दिन ऐसा आया कि कुणिक ने श्रेणिक को गिरफ्तार करके लोहे के पिंजरे में बन्द कर दिया, और आप राजा बन बैठा। एक दिन कुणिक के पुत्र की अंगुली में फोड़ा हो गया, वह पीड़ा के कारण बहुत रोता चिल्लाता था। कुणिक ने उस अंगुली को अपने मुंह में रख लिया, ताकि पुत्र को चैन मिले। मुंह की ऊष्मा से फोड़ा फूट गया, कुणिक ने मवाद थूक कर कुल्ला कर लिया। पुत्र को चैन मिला। रानी चेलना इस दृश्य को देख रही थी। उसने कुणिक को बताया कि तुझे भी बचपन में इसी प्रकार अंगुली में फोड़ा हुआ था, तब तेरे पिता ने भी तेरी अंगुली अपने मुंह में रख ली थी और फोड़ा फूट गया था। इसी प्रकार उनका मुंह भी मवाद से भर गया था। यह

सुनकर कुणिक को बड़ा आश्चर्य और मर्मान्तिक पीड़ा हुई सोचने लगा, जिस पिता ने मेरे लिए इतने कष्ट उठाए, उन्हें मुझ दुष्ट ने लोहे के पिंजरे में कैद कर रखा है उसने फौरन सेवकों को आज्ञा दी कि पिताजी को बन्धन मुक्त करो। अनेक सेवक तत्काल बन्दी गृह की ओर भागे। भागने की धड़ धड़ की आवाज श्रेणिक के पास पहुंची; श्रेणिक समझा कि कुणिक के सेवक मुझे जान से मार डालने के लिए आ रहे हैं, उसने पिंजरे की लोहे की सलाखों से जो नुकीली थी और पिंजरे के अन्दर की ओर थी, उनसे छिद कर आत्म हत्या कर ली। श्रेणिक मर कर प्रथम नरक गया। जब आत्म हत्या का यह दृश्य रानी चेलना ने देखा तो वह संसार, शरीर, भोगों से विरक्त हो गई। और भगवान के समोशरण में जाकर आर्यिका बन गई। अन्य रानियां भी दीक्षित हो गईं। चन्दना भी आर्यिका बन गई। अभय कुमार ने मुनि दीक्षा धारण कर घोर तप किया और उच्च पद पाया।

—: सम्बन्ध से भाई बहन :—

एक व्यक्ति ने अपने पुत्र को एक साधु के पास पढ़ने के लिए भेजा। जब वह पढ़ चुका तब गुरु ने शिष्य से कहा कि मेरे बताए हुए मार्ग पर चलना। शिष्य बोला, "आपकी आज्ञा शिरोधार्य। गुरु ने शिष्य को नियम दिलाया कि महीने के कृष्ण पक्ष में तुम्हें शील धर्म का पालन करना होगा। शिष्य ने श्रद्धा सहित यह नियम धारण किया। उसी नगर में एक व्यक्ति ने अपनी कन्या को आर्यिका के पास पढ़ने के लिए भेजा अध्यन के उपरान्त आर्यिका ने उस कन्या को प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष में शील व्रत धारण करने का नियम दिलाया, जो कि कन्या ने सहर्ष धारण किया।

संयोग से इस कन्या का सम्बन्ध उसी कुमार में होता है जिसने मुनि महाराज से प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष में शील व्रत पालन करने का नियम लिया था। कन्या का नाम सुशीला था और कुमार को नाम धर्म दत्त था। दोनों का विवाह के पश्चात् प्रथम रात्रि मिलन होता है। सुशीला अपने पति को बताती है कि, हे, स्वामी आज शुक्ल पक्ष की अष्टमी है। मेरा उपवास है और मैंने आजन्म शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य का नियम ले रखा है। धर्मदत्त ने सुशीला को बताया कि मेरा भी मास के कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हुआ है। दोनों श्री जिनेन्द्र भगवान के चरणों का ध्यान करते हुए प्रसन्न होते हैं। सुशीला तथा धर्मदत्त के माता पिता को जब दोनों

के शीलव्रत का पता चलता है तो वे प्रसन्न होते हैं। वर-वधू को शुभाशीर्वाद प्रदान करते हैं। पति पत्नी अपने जीवन को धन्य मानते।

—— रानी की मूर्छा रंग लाई ——

एक राजा के एक पुत्र था एक पुत्री थी। पुत्र का नाम कमल कुमार था। पुत्री का नाम कमल कुमारी था। पुत्र कमल कुमार ने यौवन में ही जिन दीक्षा लेली। विवाह नहीं कराया। पुत्री कमल कुमारी का एक राज कुमार से विवाह होगया।

एक बार मुनि (कमलकुमार) विहार करते हुए उसी नगर में आहार के लिए पहुँचे जिसमें कमल कुमारी का विवाह हुआ था। कमल कुमारी रानी अपने पति राजकुमार के पास राज महल की छत पर बैठी हुई थी, उसकी दृष्टि अकस्मात् मार्ग में विहार करते हुए मुनिराज पर पड़ी। अपने भाई को नग्न अवस्था में देख कर रानी मूर्च्छित होगई। राजा को जब रानी की मूर्च्छा के कारण का पता चला तो उसे मुनिराज पर बड़ा क्रोध आया और उसने तुरन्त सेवकों को आज्ञा दी कि वे जाकर मुनि की आंखे निकाल लें। सेवक राजा की आज्ञा का पालन करने दौड़ पड़े। होश आने पर रानी को जब राजाज्ञा का ज्ञान हुआ तो वह पुनः मूर्च्छित होगई। इधर जब राजा के सेवक मुनि की आंखे निकालने लगे तभी उन्हे केवल ज्ञान

होगया। राज मंत्री आए, उन्होंने सारी घटना सुनाई। राज मंत्री बोले, हे राजन्! आपने कार्य तो अत्यन्त निकृष्ट किया, अब रानी को सम्भालिए। रानी का राज वैद्यों ने बहुत उपचार किया, किन्तु व्यर्थ सिद्ध हुआ। रानी के प्राण पखेरु उड़ गए। यह देख कर राजा के मनको भारी आघात पहुँचा। राजा सोचने लगा, जिस रानी के मोह में आकर मैंने मुनिराज को घोर कष्ट दिया, जब वही नहीं रही तब मैं अब राज महलों में रह कर क्या करुंगा। राग का सारा सब ठाट बाट नश्वर है। यह विचार कर राजा संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होगया। दूसरे दिन प्रभात में राजा ने जिन दीक्षा लेली। नग्न दिगम्बर बन कर दुर्द्धर तपस्या में लीन होगया।

श्रेष्ठि पुत्र का वैराग्य
(जम्बू कुमार चरित पर आधारित)

भगवान महावीर के मोक्ष जाने के पश्चात की घटना है। राजा श्रेणिक मगध के सम्राट थे। राजगृही उनकी राजधानी थी। उनके राज्य श्रेष्ठि के एक पुत्र का जन्म हुआ, पुत्र का नाम जम्बू कुमार रखा गया।

युवा होने पर एक बार जम्बू कुमार राजा श्रेणिक के एक शुभ रत्न चूल को पराजित कर विजय का डंका बजाते हुए राजधानी की ओर आरहे कि नगर के बाहर वन में उन्हें सुधर्मा चार्य के दर्शन हुए। सुधर्माचार्य उस समय अनेक भव्य जीवों

को उपदेश दे रहे थे। जम्बूकुमार भी उपदेश सुनने बैठ गए। उपदेश सुनकर जम्बूकुमार संसार शरीर, भोगों से विरक्त होगए। उन्होने सुधर्माचार्य से जिन दीक्षा की प्रार्थना की। सुधर्माचार्य जी ने कहा कि आपने माता–पिता से अनुमति ले-आओ। तुम इसी भव से मोक्ष हो जाओगे। जम्बूकुमार सुधर्माचार्य की आज्ञा शिरोधार्य करके राजधानी में प्रवेश करता है। अपने घर पहुँच कर अपने माता पिता को प्रणाम करता है। माता पुत्र को स्नेहाशीर्वाद प्रदान करती है तथा पुत्र से कहती है कि मैंने नगर की आठ श्रेष्ठि कन्याओं के साथ तुम्हारा विवाह करने का निश्चय किया है। वे कन्याएं तुमसे विवाह करने का निश्चय किए हुए हैं। जम्बूकुमार ने माता को बताया कि उसका विवाह करने का कोई इरादा नहीं है, मैं तो कल प्रभात में वन में जाकर मुनि दीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण करूंगा। माता, पुत्र के इन विचारों को सुन बहुत दुखी हुई। पुत्र मोह के कारण अनेक प्रकार से जम्बूकुमार को समझाने लगी। अन्त में इस निर्णय पर पहुंची कि विवाह के पश्चात जिन दीक्षा ग्रहण की जाए। माता को विश्वास था कि विवाह के पश्चात् पुत्र मुनि बनने का विचार छोड़ देगा।

प्रभात होने के पूर्व ही सेठ-कन्याओं को सूचित किया गया कि जम्बूकुमार विवाह के पश्चात् उसी दिन मुनि दीक्षा ग्रहण करलेंगे। कन्याओं के पिताओं को भी यही सूचना दी गई। सभी सेठ अपनी कन्याओं को लेकर जम्बूकुमार के

पास आगए। निदान सेठों की आठों पुत्रियों के साथ जम्बू कुमार का विवाह सम्पन्न होगया।

अब आठों नव-वधुएं, वर जम्बूकुमार को घेर कर बैठ गई और अपनी अपनी रसीली बातों से कुमार का मन मोहित करने लगी। उन्होंने अनेक प्रयत्न किए कि कुमार का मन वैराग्य से विमुख हो जाए किन्तु उन्हें नाम मात्र भी सफलता नहीं मिली। उसी समय एक विद्युच्चर नामक चोर ने कुमार के महल में चोरी करने के इरादे से प्रवेश किया। वह भी छिपकर कुमार और सेठों की कन्याओं का वार्तालाप सुनने लगा। वार्तालाप इस प्रकार चल रहा था :—

पहली पत्नी :– हे नाथ! इस संसार में जो भी वस्तु पुण्य कर्म से प्राप्त हुई है उसे पहिले भोग लेनी चाहिए।

जम्बूकुमार :– भोग क्षण भंगुर हैं। भुजंग के समान दुख दायक हैं। भोगों तथा विषय वासनाओं में फंसी आत्मा अनादिकाल से ८४ लाख योनियों में भटक रही है।

दूसरी पत्नी – हे नाथ! आपने भोगों को त्याज्य बताया, किन्तु कर्म इतने बलवान हैं कि इसके उदय में भोगों का परित्याग असम्भव है।

जम्बूकुमार :– इन कर्मों का मुझे अनुभव है। आत्मा कर्मों से अधिक बलवान है, वह कर्मों के बन्धन काट सकती है।

तीसरी पत्नी :– आपने तो कर्मों और आत्मा दोनों का

अनुभव प्राप्त कर लिया है, अब आप हमें साथ रखकर हमें भी इनका अनुभव करा दीजिए।

जम्बूकुमार :– जिसने वस्तु स्वभाव को जानलिया, वह दूसरों को भी आत्मानुभव का बोध कराने का निमित्त मात्र बन सकता है ।

चौथी पत्नी:-- हे नाथ! वृक्ष के पके हुए फल को फैंकने से पहले चखलेना चाहिए।

जम्बूकुमार :– जो वृक्ष ही जहरीला है तो उसके फल मधुर और अमृतमय कैसे हो सकते हैं। हम ज़हरीले फल क्यों चखें ?

पांचवी पत्नी :– हे नाथ! फल कड़वे हैं या मीठे इसका पता तो चखने से चलता है। भरत जी तो घर में ही वैरागी थे।

जम्बूकुमार :-- कड़वी वस्तु चखने से मीठी कदापि नहीं हो सकती भरत जी का समय, आयु आज से सर्वथा भिन्न थे।

छठी पत्नी :– अगर फल का स्वाद कड़वा लगे तो आप भी छोड़देना।

जम्बूकुमार :– प्रत्येक आत्मा की परणति भिन्न भिन्न है। जिन्होंने वस्तु के स्वभाव को जानलिया है, वे पदार्थों में राग द्वेष नहीं करते। उन्हें आत्मानुभव में ही मधुरता का आनन्द मिलता है।

सातवीं पत्नी– जब आचार्यों ने निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध बतलाया है तो सम्भव है इसी निमित्त से हमारा कल्याण हो जाए।

जम्बूकुमार - उपादान बलवान होना चाहिए। तब निमित्तभी वैसा ही मिलेगा।

आठवी पत्नी- हे नाथ ! आपके निमित्त से ही हमारा कल्याण होना है। अतः अब आप ही हमारे पथ-प्रदर्शक हो। हमारे पूर्व जन्म के मोह के संस्कार अब गल गए। हमारे ज्ञान नेत्र खुल गए। आत्म कल्याण का मार्ग खुल गया। प्रभात हो गया। विद्युच्चर चोर भी सबके सामने प्रकट हुआ, वह जम्बूकुमार के चरणों में गिर पड़ा। अपने अपराध की क्षमा मांगी। जम्बूकुमार, उनकी आठों पत्नियां, वह चोर, तथा कुमार के माता पिता वन में पहुँचे, श्री सुधर्माचार्य महाराज को प्रणाम किया। कुमार ने आचार्य महाराज से जिनदीक्षा ग्रहण की। नग्न दिगम्बर मुद्रा अपनाई। आठों सेठ पुत्रियों ने आर्यिका के व्रत लिए। विद्युच्चर चोर भी मुनि हो गया। जम्बूकुमार अब जम्बू स्वामी बन गए। विहार किया। जम्बू स्वामी अन्तिम केवली हुए। महावीर स्वामी के निर्वाण के १०० वर्ष पश्चात् मथुरा चौरासी से जम्बू स्वामी मोक्ष पधारे।

श्री पंच कल्याणक महोत्सव रेवाड़ी

भगवान को शोभायात्र के लिये रथ मे विराजमान करने के लिये पालकी मे लेजाते हुए।

पुत्रलाभ

(सुकौशल चरित पर आधारित)

राजा यशोभद्र की रानी का नाम यशोभद्रा था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। एक-समय उनके नगर के समीप वन में एक अवधिज्ञानी चारण ऋद्धिधारी मुनिराज का मंगलमयपदार्पण हुआ। समाचार सुनकर राजा रानी भी मुनिराज के दर्शनार्थ वन में गए। दोनो ने जाकर मुनिराज को नमस्कार किया। मुनिराज ने दोनों को आत्मकल्याण लाभ होने का आशीर्वाद प्रदान किया।

राजारानी – हे स्वामिन् ! हमारे वैराग्य के परिणाम हो रहे हैं।

मुनिराज – राजन् ! अभी तुम्हारे मनमें पुत्र-प्राप्ति की लालसा शेष है।

राजा – श्री महाराजने हमारे मन की वात जान ली। आशीर्वाद दीजिए।

मुनिराज – आयुष्मान् भव, तुमको पुत्र का लाभ होगा। परन्तु……… ।

राणी – महाराज ! परन्तु का अर्थ वतलाइए।

मुनिराज – हे भव्य ! जिस समय तुम्हे पुत्र रत्न का लाभ होगा, उन्ही दिनों तुम्हारा पति मुनि हो जाएगा।

राजा और रानी दोनों राज़ महल चले जाते हैं। रानी गर्भवती हुई। समय पर पुत्र जन्म हुआ। किन्तु रानी ने अपने गर्भ और पुत्र जन्म की बात गुप्त रखी। राजा को पता न चल सका। एक दिन एक दासी पुत्र के वस्त्र धो रही थी, राजा ने देख लिया। दासी से राजा को पुत्र जन्म को वृत्तान्त ज्ञात हुआ। सेवकों ने राजा को पुत्र जन्म की बधाई दी। राजा ने सेवकों को इनाम दिया। पुत्र का नाम सुकौशल रखा गया। राजा ने रानी को गर्भ छिपाने के लिए धिक्कारा। अपने को धिक्कारा कि मैं अब तक मोह के चक्र में फंसा रहा। दूसरे दिन प्रभात में राजा ने वन में जाकर मुनि दीक्षा अंगीकार करली। रानी के मनको इस घटना से वहुत वेदना हुई। वह सोचने लगी, देखो कर्मों की कैसी विचित्रता है। कोई बात नहीं, अब मैं अपने पुत्र को भोगों में लगाए रखूंगी। कहीं ऐसा न हो पुत्र भी दीक्षित हो जाय।

समय आने पर पुत्र युवा हुआ। रानी ने पुत्र सुकौशल का राज्याभिषेक करवाया। प्रजागण परस्पर वार्तालाप करने लगे, देखो राजमाता ने राजकुमार के राजतिलक की कितनी तैय्यारियां करवाई हैं, यदि आज इनके पिता (राजकुमार का) होते तो वह कितने प्रसन्न होते। सुकौशल के कानों मे ये शब्द पड़े। सुकौशल ने अपनी माता से पूछा, "हे माता, मेरे पिता जी कहां है ? माता ने उत्तर दिया," बेटा ! राज तिलक होने के वाद बतलाऊंगी।

सुकौशल -- नहीं पहले बतला, अन्यथा राजतिलक नहीं करवाऊंगा।

माता -- अच्छा सुन! तेरे पिता को एक मुनिराज ने बताया था कि जब तुम्हारे पुत्र होगा तभी तुम दीक्षित हो जाओगे। बेटा! तेरे पिता के मुनि हो जाने के भय से मैं तेरा गर्भ और जन्म का वृतान्त साढ़े दस माह तक छिपाए रही। जब तू केवल डेढ़ माह का था, तेरे पिता को तेरे जन्म का पता चल गया और वह उसी दिन मुनि हो गए।

सुकौशल -- माता! मेरे ही कारण मेरे पिता मुनि बने। इतने समय मोह में फंसे रहे। मैं अब देर नहीं लगाऊंगा। आज ही मुनि दीक्षा लेता हूं।

राजकुमार सुकौशल तत्काल वन को चलदिए। वन में अपने पिता के पास जाकर जिन दीक्षा ग्रहण की। पुत्र वियोग में रानी ने महल की छत से गिरकर आत्म हत्या करली। आर्तध्यान से मर कर शेरनी की पर्याय पाई। सुकौशल मुनि वन में ध्यान लगाए हुए थे यह शेरनी मुनिराज के समीप पहुंची और उनको भक्षण करना शुरु कर दिया। सुकौशल के पास ही विराजमान उनके पिता मुनिराज ने यह दारुण दृश्य देखा तो वे वहां से उठकर चल दिए।

नगर निवासियों को इस दुर्घटना का पता चला, लोग वन में गए। उन्होंने सुकौशल के पिता यशोभद्र के दर्शन किए

और प्रश्न किया कि शेरनी ने आपको कैसे छोड़ दिया। यशोभद्र ने बताया कि हे प्राणियो ! संसार की गति बड़ी विचित्र है। सुकौशल और मैं पुत्र और पिता हैं। मुझे राज अवस्था में यशोधर मुनिराज ने बताया था कि तुम पुत्र जन्म होते ही मुनि बन जाओगे। मेरी रानी ने पुत्र के गर्भ और जन्म को छिपाए रखा। उसे पुत्र और पति दोनों का मोह था। मुझे ज्योहीं पुत्र जन्म वृतान्त ज्ञात हुआ, मैं मुनि बन गया। मेरी रानी ने महल की छत से गिरकर आत्म हत्या कर ली क्योंकि उसका पुत्र भी मेरे मुनि होने की घटना को ज्ञात कर मुनि होगया। मैं डेढ़ महीने पुत्र मोह के चक्र में फंसा रहा राजतिलक के अवसर पर राजकुमार मुनिबन गया। मैंने ही उसे मुनिदीक्षा दी। रानी खोटे भावों से मरकर शेरनी हुई और आज उसने सुकौशल को भक्षण किया। देखो, माता पुत्र को भी खाजाती है। संसार दुखों का केन्द्र है। मैंने रानी के जीव को सम्बोधा भी है। वह सुकौशल के शरीर को आधा खाकर चली गई। उसे मेरे सम्बोध ने से जाति स्मरण होगया। अब उसके परिणाम शान्त हैं। यह संसार की गति है। संसार में सुख कहां ?

नगर निवासी यशोभद्र मुनिराज को नमस्कार करके सुकौशल मुनिराज के आधे बचे शरीर का अग्नि संस्कार करके नगर को चले जाते हैं। इस घटना से अनेक व्यक्ति संसार से उदासीन हो जाते हैं। अपनी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार व्रत, संयम और तप को अंगीकार करते हैं।

—: दीपमालिका :—

स्थान-पावापुरी (दो पथिक जा रहे हैं)

प्रथम पथिक -- अरे ! यह सामने क्या नजर आ रहा है।

द्वितीय पथिक -- जानता नहीं ? श्री भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ है देवगण उनकी पूजन करके जा रहे है । घन्टा नाद हो रहा है।

अग्नि कुमार देवों ने उनके मायामयी शरीर का अग्नि संस्कार किया है।

प्रथम पथिक -- और यह दूसरा दृश्य क्या है ?

द्वितीय पथिक -- यह सरोवर है, यहां कितने सुन्दर कमल खिल रहे हैं। (दोनों चल देते हैं)

(स्थान-गणावा जी, समय सन्ध्या)

प्रथम पथिक -- यह रोशनी कैसी नजर आ रही है !

द्वितीय पथिक -- इस समय श्री गौतम स्वामी को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ है। देवगण केवल ज्ञान की पूजा करके जा रहे हैं। रत्नों का प्रकाश है।

प्रथम पथिक -- हमने तो ऐसा दृश्य पहले कभी नही ....। क्या कारण है ?

द्वितीय पथिक – प्रभात में देवों ने भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव दीपमालिका के रुप में मनाया और सन्ध्या को श्री गौतम स्वामी का केवल ज्ञान महोत्सव दीपामालिका के रुप में मनाया। आगे भी इसी प्रकार से मनाया जाएगा।

।। कन्या का प्रण ।।

एक राजकन्या अपनी माता तथा सैनिकों के साथ गंगा स्नान के लिए गंगा तट पर पहुँची। अन्य राजकुमार भी उस गंगा स्नान के मेले में यथा स्थान ठहरे हुए थे। प्रातःकाल स्नानार्थी यात्री आरहे थे। राजकन्या भी स्नान के लिए पानी में उतरी। अकस्मात उसके पांव फिसल गये और वह डूबने लगी, यह दृश्य देखकर एक राजकुमार उसे बचाने के लिए पानी में कूद पडा कन्या तक पहुँचने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु सफल न हो सका भरत के भ्राता बाहुबलि ने दोनों को डूबते हुए देखा, वे तत्काल गंगा में कूद पड़े और दोनों को अपनी भुजाओं पर उठा लाये। फिर यथा स्थान चले गये।

जो राजकुमार राजकन्या को बचाने को पानी में कूदा था वह राजकन्या पर मोहित हो गया, उसने कन्या के पिता के पास सन्देशा भेजा कि अपनी कन्या का विवाह मेरे साथ कर दो अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। उन दिनों अयोध्या

में भगवान ऋषभदेव राज्य करते थे, कन्या के पिता का दूत उनके राजदरबार में पहुँचा और सारा वृतान्त सुनाकर अपने स्वामी की रक्षा के लिए प्रार्थना की।

सम्राट ऋषभदेव ने बाहुबलि को आज्ञा दी कि तुम इस राजा की सहायता करो। बाहुबलि, राजा तथा राजकन्या की रक्षा के लिए जाते हैं। मार्ग में उसी राजकन्या का डोला मिलता है। उसके साथ राज्य सिपाही भी थे वह घबराई हुई थी बाहुबलि ने उस कन्या को समझा कर उसे तो वापिस करवा देता है। और दूसरे राजा के पास जाकर उससे उसे बचाने की याद दिलाता है जब वह समझ गया। अपने स्थान बाहुबलि आजाता है इस प्रकार युद्ध टल गया। कालान्तर में बाहुबलि मुनि बन जाते हैं और तपस्या में लीन हो जाते हैं। राजकन्या बाहुबलि पर मोहित हो चुकी थी, उसने प्रण किया था कि बाहुबलि के साथ विवाह करूंगी वह उनके मुनि बनने का समाचार ज्ञात कर वन में उनके पास गई, वहा उसने बाहुबलि की शान्त, ध्यानास्थ मुद्रा देखी, और वह भी संसार शरीर भोगो से विरक्त हो गई, उसने भी व्रत लेलिये। इस प्रकार राजकन्या का कल्याण हो गया।

—: मुनि उपसर्ग निवारण

[जिनदत्त सेठ की कथा]

किसी नगर में एक धनाढ्य ब्राह्मण रहता था। उसके एक अभिमानिनी कन्या थी। कोई भी युवक उससे विवाह करने को तत्पर नहीं होता था। क्रोध भी उसे तीव्र आता था। किसी की तू तड़ाक वह सहन नहीं कर सकती थी, इसलिए उसका तूंकारी नाम पड़ गया। तुंकारी का पिता साहूकार दुकानदार था। एक दिन वह अपनी दुकान पर बैठा हुआ था, कि उसे मार्ग में सामने जाता हुआ एक सुन्दर, स्वस्थ नवयुवक दिखाई दिया। ब्राह्मण ने उसे अपने समीप बुलाया और उसके बारे में परिचय प्राप्त किया। यह ब्राह्मण नवयुवक बनारस से पढ़कर विद्वान् बन कर आया था। बड़ा सरल स्वभाव, विनयशील और निरभिमानी था।

ब्राह्मण ने युवक से कहा कि मेरी एक सुन्दर कन्या है, मैं तुम्हारे साथ उसका विवाह करना चाहता हूँ। मैं तुम्हें धन सम्पत्ति रहने के लिए मकान और रोजगार के लिए दुकान भी दूंगा। आभूषण और वस्त्र भी दूंगा लेकिन एक शर्त है कि उससे तू कहकर मत बोलना, युवक ने सोचा, कोई बात नहीं, एक ही दोष तो है फिर तू करके बोलने से मुझे क्या लाभ। मैं आदर से सम्बोन्धित करूंगा। धन के लोभ में उसने अपनी

स्वीकृति दे दी। शुभ मुहूर्त में विवाह सम्पन्न हो गया। दोनों को अलग एक मकान दे दिया गया। तूंकारी को बड़ा घमंड था, वह अपने पति को पति ही नहीं मानती थी। कामधाम भी कुछ नहीं करती थी। कभी माँ बाप के यहां भोजन कर आती, कभी खुद घर बना कर खा लेती। कुछ दिन इसी प्रकार बीत गए।

एक दिन युवक रात को कुछ देर से आया। तूंकारी ने अन्दर से किवाड़ बन्द कर रखे थे। युवक ने किवाड़ खोलने के लिए सैंकड़ों आवाजें लगाईं किन्तु तूंकारी ने किवाड़ नहीं खोलने का दृढ निश्चय कर रखा था। किवाड़ नहीं खोले आखिरकार ब्राह्मण युवक को कुछ क्रोध आगया। वह बाहर से चिल्लाकर बोला, "तू किवाड़ नहीं खोलेगी, तो मैं अभी नगर छोड़कर चला जाऊंगा। अपने तू शब्द का उच्चारण सुनते ही तूंकारी आग बबूला हो गई। उसने दौड़कर भड़ाक से किवाड़ खोल दिये और घर से भाग कर जंगलों में चली गई।

जंगल में एक भील झोपड़ी में लेटा हुआ था। उसने तूंकारी के जेवरों की झनकार सुनी, वह तुरन्त झोपड़ी के बाहर आया। उसने तूंकारी को पकड़ लिया। उसके समस्त आभूषण उससे छीन लिये और उसे शहर लेजाकर एक वेश्या के हाथ बेच दिया। कर्मों की गति कितनी विचित्र है। कहां ब्राह्मण का पवित्र कुल विद्वान् पति और कहां पापों की खान वेश्या का अपवित्र घर।

वेश्या ने उसे कुछ दिन अपने पास रखा, अपना काम निकाला, और अपना किया हुआ खर्च निकालने के लिए उसे एक नीलगर को बेच दिया। जहां भी उसने क्रोध किया; वहीं उसने मार खाई। पिटते पिटते और भूख प्यास सहते उसका तन सूखकर कांटा हो गया। क्रोध भी उसका काफी झड़ गया सौन्दर्य समाप्त हो गया।

नीलगर ने जब उसकी यह अवस्था देखी तो उसे एक मास तक खूब खिला पिलाकर मोटा ताजा किया, शरीर में फिर से रक्त का संचार हुआ। शरीर स्वस्थ और सुन्दर हो गया। अब नीलगर प्रतिदिन उसके शरीर से खून निकालने लगा। और घावों पर लाक्षादि तेल लगा देता था। घर से बाहर नहीं जाने देता था। जब नीलगर काम से बाहर जाता तब बाहर से ताला लगा जाता था। एक दिन तूंकारी मकान में कैद थी वह मकान की छत पर बैठी थी, इधर उसका भाई उसे खोजने निकला हुआ था। खोजता खोजता इस नगर में आ पहुंचा तूंकारी की नजर अपने भाई पर पड़ी, उसने इशारे से अपने पास बुलाया। पड़ोस वाले यद्यपि उसे देख रहे थे, किन्तु इसे दुखिया जान चुप रहे, तूंकारी घर की रस्सी के सहारे उतर कर अपने भाई के साथ हो ली। भाई और बहिन शीघ्र ही तेज चाल से चलकर नगर से बाहर हो लिए और अपने नगर चले गये। तूंकारी भाई के साथ चलकर अपने माता पिता के घर पहुँच गई। उसका पति तो तूंकारी के भाग जाने के बाद

ही नगर को छोड़कर चला गया था, अतः अब वह अपने मा बाप के पास ही रहने लगी। उसका क्रोध शान्त होचुका था। अब कोई भी उससे किसी भी तरह बोले, उसे नाम मात्र गुस्सा नहीं आता था। प्रायः वह मौन रहती थी।

एक समय एक मुनिराज श्मशान में पद्मासन ध्यानस्थ विराजमान थे। अकस्मात वहां एक कापालिक विद्यासाधने निमित्त आ निकला। वहीं पास में एक अर्ध जला मुर्दा पड़ा हुआ था। दुष्ट कापालिक को मनुष्य की खोपड़ी में खीर पकानी थी। उसने चूल्हा बनाने के लिए एक तरफ तो उस अधजले मुर्दे को लगाया, दूसरी तरफ तपस्या से काले पड़ गए ध्यानास्थ मुनिराज को लकड़ी समझ कर उन्हें लगा दिया, तीसरी और बीच में ईंटे लगाकर चूल्हा प्रज्वलित कर दिया। आंच तीव्र होने पर मुनिराज की खोपड़ी चटक उठी। मुनिराज ने शान्त परिणामो से घोर परीषह सहन किया। खोपड़ी के चटकने से कापालिक भयभीत होकर नगर की ओर भागा। इधर खोपड़ी की चटक से चून्हा भी बुरी तरह हिल गया, और सब कुछ बिखर कर इधर उधर हो गया। मुनिराज का सिर बुरी तरह जलकर जख्मी हो गया। नगर में जिनदत्त नामक एक सेठ जी रहते थे, उन्हें पता चला कि शमशान में कोई मुनिरोज ध्यान लगाये विराजमान हैं। वह प्रातः शमशान में आया। उसने मुनिराज को आंच से घायल देखा। जिनदत्त के हृदय में मुनिराज के प्रति श्रद्धा, सेवा, और भक्ति की भावना

उमड़ पड़ी। वह मुनिराज को नगर में ले गया। एक शान्त एकान्त स्थान में अपने घर के समीप ही उन्हें ठहराया। अब सेठ के मन में मुनिराज के घावों का उपचार करने का ख्याल आया। मुनिराज तो सिर के घावों की तीव्र वेदना को असाता कर्म का तीव्र उदय समझ शान्त भावों से सहन कर ही रहे थे किन्तु सेठ जी उपचार के लिए प्रयत्न शील थे। उन्होंने सुन रखा था कि तूंकारी के पास लाक्षादि तेल है। उससे जले के घाव भी जल्दी ठीक हो जाते हैं। सेठ जी को तूंकारी से बड़ा डर लगता था, फिर मुनि भक्ति से प्रेरित हिम्मत करके उसके पास पहुँचे। घर के बाहर से ही आवाज लगाई कि मुझे मुनिराज के उपचार के लिए थोड़ा लाक्षादि तेल दे दो। तूंकारी को नाम मात्र भी क्रोध नहीं आया तूंकारी ने कहा, "सेठ जी अन्दर ऊपर आ जाइये, मैं जरा काम में लगी हुई हूँ। जितना तेल आपको चाहिये ले जाइये। सेठजी मकान की दूसरी मंजिल पर पहुँचे वहा लाक्षादि तेल से भरे कई घड़े रखे थे, शीशीयों में भी तेल था। सेठ जी ने एक भरी हुई शीशी उठाई, अकस्मात शीशी हाथ से छूट कर गिर पड़ी और फूट गई सारा तेल बिखर गया। सेठ जी ने तूंकारी से कहा कि मुझसे बड़ा भारी अपराध हो गया। एक शीशी अकस्मात हाथ से छूट कर फूट गई। तूंकारी ने अपना कार्य करते हुए वहीं से जवाब दिया, "सेठजी कोई बात नहीं, और तेल ले लीजिये, घड़े के घड़े ले जाइये, जितनी इच्छा हो ले जाइये। मेरे अहो भाग्य, जो आप मेरे घर पधारे, मेरे इससे बढ़कर सौभाग्य क्या होगा कि मेरा तेल मुनिराज के उपचार में काम आए।

सेठ जी तूकारी की शान्ति-भाव भरी मुद्रा देखकर विस्मित रह गए। तूंकारी ने क्रोध के कारण होने वाली अपनी दुर्दशा आद्योपान्त कह सुनाई। सेठ तैल लेकर चले गए, मुनिराज के जख्मों पर तैल लगाया। कुछ दिनों के उपचार से मुनिराज पूर्ण स्वस्थ हो गए। वर्षा ऋतु आगई। सेठ जी ने अपने ही नगर में, अपने घर के समीप एकान्त में मुनिराज से चातुर्मास करने की प्रार्थना की। मुनिराज ने सेठ को धर्मोंपदेश देने की भावना से सेठ जी की प्रार्थना स्वीकार करली।

एक दिन सेठ जी ने अपना सारा धन उसी मकान में गाड़ दिया, जिसमें मुनि राज ठहरे हुए थे, सेठ का लड़का छिपकर धन गाड़ने के दृश्य को देख रहा था। वह दूसरे दिन सारा धन निकाल कर चम्पत होगया। एकदिन सेठ जी ने अपना धन निकालने के लिए धरती खोदी किन्तु धन कहां से निकलता उसे सेठ का पुत्र पहले ही निकाल चुका था। सेठ जी को मुनि राज पर सन्देह हुआ, उसने सोचा कि मुनिराज ही बराबर विद्यमान रहते हैं, और कोई आता नहीं। लेकिन सेठजी मुनिराज से साफ तो कह नहीं सकते थे कि धन कहां गया? अथवा कि तुमने मेरा धन निकाला है, इसलिए बात को घुमा फिरा कर कहानियों के माध्यम से कहने लगे। मुनिराज ने भी साफ साफ तो नहीं कहा कि मैंने धन नहीं लिया, किन्तु कथाओं के द्वारा उसे समझाना चाहा। सेठजी का लड़का छिपकर इस मुनि-सेठ वार्तालाप को सुन रहा था, उसने प्रकट होकर मुनिराज को

प्रणाम किया और अपने पिता को धिक्कारा कि तुम गुरुओं पर भी चोरी करने का दोष लगाते हो। अरे! धन तो उसी दिन मैं निकाल कर ले गया था जिसदिन तुमने मुझसे छिपाकर इस घर में गाड़ा था। यह सुनकर सेठ जी मुनिराज के चरणों में गिर पड़े। अपने अपराध की क्षमा मांगने लगे। मुनिराज तो सहज वीतरागी थे ही, किसी से भी रागद्वेष नहीं था। उन्होने सेठ जी को उपदेश देकर शान्त किया, और चातुर्मास पूर्ण होने पर वहां से अन्यत्र विहार कर गए। धन्य है ऐसे वीतरागी, परोपकारी, तपस्वी मुनिराज को जो स्वपर कल्याण करते है।

—: लोभ का दुष्परिणाम :—

किसी नगर में एक अत्यन्त लोभी सेठ रहता था। उसका नाम नकटू शाह पड़ गया था क्योंकि जिसको भी वह नौकर रखता था यह शर्त मनवा लेता कि अगर वह काम से घबराकर नौकरी छोड़ेगा तो उसे अपने नाक कान कटवाकर जाना होगा। अगर हम खुद नौकरी से हटावेंगे तो हम भी अपने नाक कान कटवालेंगे।

सेठजी नौकर को खाने के लिए एक पत्ता भर भात देते थे। सेठानी भी बहुत कजूस तथा दुष्ट स्वभाव की थी, वह नौकर को बहुत तंग करती थी।

अनेक नौकर तंग आकर जाते समय अपने नाक कान कटवा चुके थे। कुछ छिपकर भाग गए थे। एकबार एक सीधा

सादा नौकर सेठजी के यहाँ काम करने पर नियुक्त हुआ। तंग आकर उसने नौकरी छोड़नी चाही तो सेठ ने शर्त के अनुसार उसके नाक कान काट लिए। वह बेचारा रोता हुआ अपने बड़े भाई के पास पहुंचा यह देखकर भाई को बहुत क्रोध आया। वह सेठ से इस कुकर्म का बदला लेने पहुँचा।

वह जाकर सेठजी की शर्तों के अनुसार नौकर बन गया और सेठ जी को तंग करना शुरु करदिया। इसका नाम विकटू था। वह भात लेने के लिए बड़ा पत्ता लाने लगा। वह सेठानी से लड़ झगड़ कर अधिक भात लेता, जितना खाने से बचता, उसे जानवरों को खिलादेता।

सेठजी ने उसको कह रखा था कि जब मैं काम कर रहा होऊं तब व्यर्थ बोलकर काम में दखल मत देना। एक दिन जेठ के महीने में सेठजी के मकान में आग लगादी गई। सेठानी घर पर थी नहीं, सेठजी दुकान पर थे। विकटू आराम से धीरे २ दुकान पर पहुँचा, सेठजी उस समय अपना बही खाता देख रहे थे विकटू सेठजी के सामने चुपचाप जाकर खड़ा हो गया। बहुत देर खड़ा रहा, सेठ जी ने विकटू को बैठने के लिए भी नहीं कहा, जब बही खाता देख चुके तब विकटू से बोले क्या बात है, क्यों खड़ा है ? विकटू बोला सेठजी मकान में आग लग गई। सेठजी बोले, "अबे इतनी देर से खड़ा है, जल्दी क्यों नहीं बताया नौकर बोला; आपने कह रखा है कि काम करते समय दखल मत देना। सेठ जी अपना माथा पीटते हुए भागकर घर पहुँचे, देखा आधा मकान जल चुका है। जैसे तैसे आग बुझाई।

एक बार सेठजी ने गंगा स्नान करने का विचार किया। सेठानी जी भी तैयार होगई। सेठ जी के सन्तान तो कोई थी नहीं नौकर के भरोसे घर छोड़कर जाने लगे, तो विकटू से बोले, घर की सम्भाल रखना, न आने वाले को रोकना, न जाने वाले को रोकना। एक रात मोरी के मार्ग से एक चोर घर में घुस आया विकटू सो रहा था, चोर के घुसने से विकटू की आख तो खुल गई किन्तु उसने चोर को घर में घुसने से नहीं रोका, चोर माल को बांधकर, घरसे बाहर होगया। विकटू ने चोर को माल ले जाने से नहीं रोका। कुछ दिनों पश्चात सेठ सेठानी तीर्थ यात्र से लौटे, तो उन्होंने घर में माल नहीं देखा, तो विकटू से मालूम किया कि घर का सामान कहां गया ? विकटू बोला, "माल तो चोर ले गए। सेठजी" बोले, अबे तू कहां मर गया था। नौकर बोला मैं तो घर ही पर था, किन्तु आप बोल गए थे, कि आने जाने वाले को रोकना नहीं अतः मैं चोर को आने जाने से नहीं रोका।

सेठ जी का मतलब तो पची, चूहे इत्यादि से था न आदमियो से। अब सेठजी दरिद्र हो चुके थे, अपने पाप कार्य से उन्हें घृण्य हो चुके थे। सेठ और सेठानी ने अब भगवद्धर्म की ओर चित्त लगाया। जो कुछ बचा था, उसे दान पुण्य में लगा कर साधुबनाए। सेठानी ने भी अपने पति के मार्ग का अनुसरण किया।

卐 दातारों की सूची 卐

२००) प्रतापसिंह बुद्धामल जैन सर्राफ
१०१) सुरजभान रंजीतसिंह (बहादरगढ़)
१००) गीपीराम राजेन्द्र कुमार जैन सर्राफ
१००) जौहरीलाल रतनलाल जैन
१००) मोहनलाल दयाचन्द सर्राफ
१००) पन्नालाल दुलीचन्द नसीराबाद
१००) मिट्ठनलाल बाबूलाल पंसारी तिजारा
५१) इन्द्रसेन मामनचन्द सर्राफ
५१) मालूराम नम्बरदार
५१) छोटेलाल मेहरचन्द पंसारी
५१) मनोहरलाल नरेन्द्र कुमार सर्राफ
५१) मनोहर फूलचन्द गुड़वाले
५१) मौहरसिह रतनलाल हलवाई
२५) वीरसैन सर्राफ
२५) जयकुमार नरेन्द्र कुमार
२५) छोटेलाल प्रेमचन्द
२५) डा० के० सी० जैन
२५) विनोदीलाल मोतीराम सर्राफ
२१) श्रीराम बाबूलाल सर्राफ
२१) श्रीमती बोदनलाल [बड़ा]
२१) जगदीश चन्द पनवाड़ी
२०) जयन्ती प्रसाद महेन्द्र कुमार पसारी
२०) इन्द्रसेन शिखरचन्द पसारी
२०) छज्जुराम सागरचन्द पसारी
२०) कालूराम मशीनवाला
२०) शिखरचन्द नरेन्द्र कुमार (बजाज)

मुन्शीलाल हीरालाल (पंसारी)

०) गूजरमल सागरचन्द (बजाज)

२०) बनारसीदास ताराचन्द

२०) सुलतानसिंह पनसारी (फिरोजपुर छावनी)

११) बनारसीदास नानक चन्द

चित्रों सम्बन्धी दान

१०१) नेमीचन्द बजाज रेवाडी

१००) उग्रसैन (तिजारा वाले)

६१) श्रीमती कल्पना जैन (जैन गर्ल्ज, हाई स्कूल)

५१) जीवनराम टीकमचन्द

२१) गोपीराम राजेन्द्र प्रशाद

२१) वीरसैन सर्राफ

२१) जयन्ती प्रशाद बजाज

२१) डालचन्द मुनीम

२०) छज्जुराम सागरमल पसारी

११) बनारसीदास ताराचन्द

११) पूरण चन्द सौदागर

११) नवल किशोर सर्राफ

११) लखमी चन्द अभय कुमार

१०) छोटेलाल प्रेमचन्द